



कमला नेहरु महिला महाविद्यालय : भुवनेश्वर

हिंदी विभाग ; ई-पत्रिका

हिंदी भारती

नव वर्ष की हार्दिक
शुभकामनाएँ



मन्नु भंडारी विशेषांक

नवम्बर-दिसम्बर

2018



संपादक मंडली

संपादक : डॉ. वेदुला रामालक्ष्मी
डॉ. मनोरमा मिश्रा

उप – संपादक : कु. सोनाली राउत
कु. सरिमता महंती
कु. श्रावणी महंती





संपादकीय

“हिंदी भारती” का नवंबर एवं दिसंबर का अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है।

“हिंदी भारती” के सभी पाठकों को -

“नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनायें”

“हिंदी भारती” का यह अंक नव वर्ष की नवीन आशाओं, आकांक्षाओं एवं सपनों को समर्पित है। छात्राओं की परीक्षा की वजह से हम नवंबर का अंक प्रस्तुत नहीं कर सके, जिसका हमें खेद है। अतः यह अंक नवंबर एवं दिसंबर का है।

यह अंक लेखिका मन्नू भंडारी को समर्पित है। विभाग की छात्राओं ने मन्नू भंडारी जी के साहित्य को पढ़ा समझा एवं अपनी दृष्टि से देखते हुए इस अंक में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। आशा है आप पाठकों को यह अवश्य पसंद आयेगा।

“आपकी बात” हमारे लिये अखण्ड प्रेरणा का स्रोत है। कृपया हमारी पत्रिका को पढ़ कर अपनी प्रतिक्रिया भेजते रहें।

हम आशा करते हैं कि हर अंक की तरह आप इस अंक को भी स्वीकार करते हुए भविष्य में हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे और आपका आदर और स्नेह हमें इसी तरह मिलता रहेगा। अब हमारी पत्रिका को आप हमारे महाविद्यालय के वेब साइट www.knwcbsr.com पर भी पढ़ सकते हैं।

संपादक : डॉ. वेदुला रामालक्ष्मी

डॉ. मनोरमा मिश्रा

अनुक्रमणिका

क्र सं.	शीर्षक	विधा	नाम	पृ. सं.
1.	मन्नू भंडारी	परिचय		5
2.	मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री	लेख	इंटरनेट से संगृहित	8
3.	'आपका' बंटी में स्त्री विमर्श	लेख	पिंकी सिंह	13
4.	"पंडित गजाधर शास्त्री" एक दृष्टि	लेख	कादम्बिनी पंडा	16
5.	मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी	लेख	लिजा मिश्रा	17
6.	"एक कहानी यह भी" में मानवीय संवेदना	लेख	सोनिया नायक	21
7.	यही सच है	कहानी	मन्नू भंडारी	25
8.	"अकेली" कहानी में नारी की वास्तविकता	लेख	सोनाली राउत	48
9.	आपकी बात	आपके विचार		49
10.	मन्नू भंडारी के उपन्यास	यू ट्यूब लिंक		50
11.	यादों के गलियारों से	चित्र स्मृतियाँ	यादों के गलियारों से	51



मन्नू भंडारी

मन्नू भंडारी जी का जन्म 3 अप्रैल 1931 को मध्यप्रदेश के भानपुरा में हुआ था और अजमेर और राजस्थान में वे बड़े हुए, जहाँ उनके पिता सुखसम्पत राय भंडारी एक स्वतंत्रता सेनानी, सामाजिक कार्यकर्ता और पहली इंग्लिश टू हिंदी और इंग्लिश टू मराठी डिक्शनरी के निर्माता भी थे।

अपने माता-पिता की पाँच संतानों में से भंडारी सबसे छोटी थी। वे दो भाई और तीन बहनें थी। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अजमेर से पूरी की, कलकत्ता यूनिवर्सिटी से ग्रेजुएट हुए और फिर हिंदी भाषा और साहित्य में एम.ए. की डिग्री हासिल करने के लिए वे हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी गयीं। भंडारी हिन्दू लेखक राजेन्द्र यादव की पत्नी थीं।

इसके बाद उन्होंने हिंदी प्रोफेसर के रूप में अपने करियर की शुरुवात की थी। 1952-1961 तक उन्होंने कोलकाता बालीगंज शिक्षण सदन में, 1961-1965 तक कोलकाता रानी बिरला कॉलेज में, 1964-1991 तक मिरांडा हाउस कॉलेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी में पढ़ाती थीं और फिर 1992-1994 तक वे विक्रम यूनिवर्सिटी की उज्जैन प्रेमचंद सृजनपीठ में डायरेक्टर थीं।

2008 में भंडारी जी को के. के. बिरला फाउंडेशन की तरफ से उनकी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' के लिए व्यास सम्मान से सम्मानित किया गया। यह अवार्ड हर साल हिंदी साहित्य में अतुलनीय उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले इंसानों को दिया जाता है।

उनके कार्यों ने निश्चित ही समाज में स्त्रियों के प्रति की विचारधारा को बदला, उनके द्वारा लिखे गये लेख और रचित कविताएं काफी प्रभावशाली होती थीं। भंडारी हमेशा समाज में चल रही घटनाओं

का वर्णन अपने लेखों और अपनी कविताओं में करती थी। और इसीलिए उनकी कविताएं हमेशा पढ़ने वालों के दिल को छू जाती थी।

भंडारी जी अपनी छोटी कहानियों और उपन्यासों दोनों के लिए प्रसिद्ध थीं। उनके प्रसिद्ध कार्यों में 'एक प्लेट सैलाब (1962)', 'मैं हार गयी (1957)', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है', 'त्रिशंकु', और 'आँखों देखा झूठ' शामिल हैं। इसके साथ ही "आपका बंटी" उनके सबसे सफलतम और सबसे प्रसिद्ध उपन्यासों में से एक है।

हिंदी इतिहास के सबसे सफलतम उपन्यासों की सूची में भी इसे शामिल किया गया है। इस उपन्यास के सह-लेखक उन्हीं के पति, लेखक राजेन्द्र यादव थे। जिन्होंने मिलकर 'एक इंच मुस्कान (1962)' की भी रचना की थी। यह आधुनिक शिक्षित लोगों की एक प्रेम कहानी पर आधारित एक उपन्यास है। और साथ ही यह पहला उपन्यास था जिसमें भंडारी ने साथ में काम किया था।

इस उपन्यास में पुरुष पात्र अमर के डायलॉग राजेन्द्र यादव ने लिखे थे जबकि महिला पात्र, आमला और रंजना के डायलॉग भंडारी ने लिखे थे।

साधारण इंसान के संघर्ष और मेहनत की कहानी को उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया था। इस कहानी को बाद में सबसे प्रसिद्ध और सबसे सफल नाटक भारत रंग महोत्सव में नयी दिल्ली में प्रदर्शित किया गया था। इसके साथ-साथ फिल्म "रजनीगंधा" भी उन्हीं की कहानी "यही सच है" पर आधारित थी जिसे 1974 में बेस्ट फिल्म का फिल्मफेयर अवार्ड भी मिला था।

आपका बंटी फिल्म अनुकूलन के विषय में विवाद

भंडारी ने अपने दूसरे उपन्यास 'आप का बंटी' के अधिकार बेच दिए और बाद में धर्मेन्द्र गोयल द्वारा बनाई गई फिल्म के लिए और बाद में शिशिर मिश्रा द्वारा निर्देशित फिल्म के लिए अनुकूलित किया गया। इस फिल्म में शबाना आज़मी, शत्रुघ्न सिन्हा, टीना मुनीम और विनोद मेहरा ने अभिनय किया। भंडारी ने बाद में फिल्म निर्माता काले विकास पिक्चर्स प्राइवेट लिमिटेड के विरुद्ध मुकदमा दायर किया कि इस अनुकूलन ने उनके उपन्यास को विकृत कर दिया और इसके परिणामस्वरूप भारतीय कॉपीराइट अधिनियम 1957 की धारा 57 का उल्लंघन हुआ है। इस मामले में निर्णय, मनु कृष्णा बनाम कला विकास मोशन पिक्चर्स लिमिटेड भारतीय कॉपीराइट कानून में एक ऐतिहासिक निर्णय है जो भारतीय कॉपीराइट कानून के तहत लेखक के नैतिक अधिकारों के दायरे को स्पष्ट करता है। न्यायालय भंडारी के पक्ष में था, लेकिन वह और निर्माता अंततः अदालत के बाहर एक समझौते पर पहुंचे।

प्रकाशित कृतियाँ

कहानी-संग्रह :- एक प्लेट सैलाब, मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है, त्रिशंकु, श्रेष्ठ कहानियाँ, आँखों देखाझूठ, नायक खलनायक विदूषक।

उपन्यास :- आपका बंटी, महाभोज, स्वामी, एक इंच मुस्कान और कलवा, एक कहानी यह भी।

पटकथाएँ :- रजनी, निर्मला, स्वामी, दर्पण।

नाटक :- बिना दीवारों का घर।

पुरस्कार एवं सम्मान

महाभोज 1980-1981 के लिए उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान (उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान)

भारतीय भाषा परिषद (भारतीय भाषा परिषद), कोलकाता, 1982

काला-कुंज सम्मान (पुरस्कार), नई दिल्ली, 1982

भारतीय संस्कृत संसद कथा समरोह (भारतीय संस्कृत कथा कथा), कोलकाता, 1983

बिहार राज्य भाषा परिषद (बिहार राज्य भाषा परिषद), 1991

राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, 2001-02

महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी (महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी), 2004

हिंदी अकादमी, दिल्ली शलाका सम्मान, 2006-07

मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन (मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन), भवभूति अलंकरण, 2006-07

के.के. बिड़ला फाउंडेशन ने उन्हें अपने काम के लिए 18 वें व्यास सम्मान के साथ प्रस्तुत किया, ए कहानी यह भी, आत्मकथा





मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री

भारतीय नारी की मुक्ति आंदोलन का इतिहास बहुत पुराना है। यह अलग बात है कि तब उसे 'नारी-विमर्श' या 'नारीवादी साहित्य' जैसी संज्ञा से विभूषित नहीं किया गया था। किंतु समय एवं परिस्थिति के अनुसार नारी की दशा को सुधारने एवं उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में आगे लाने के सतत प्रयास होते रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद से नारी-विमर्श एक गंभीर विचार केंद्रित मुद्दा रहा है। किंतु विडम्बना यह रही है कि इस विषय को छूते ही बड़े-बड़े बुद्धिमान व्यक्ति मानवीयता का आवरण उतार कर पुरुषवादी सुर अलापने लगते हैं। अक्सर यह विषय एक फैशनबल बहस मात्र बनकर रह गया है। लेकिन विकास की प्रक्रिया धीमी हो सकती है, अवरुद्ध नहीं। इसीलिए फैशनबल बहस बन जाने व अपने स्वरूप की सत्यता को खो देने के उपरांत भी ऐसा चिंतन चलता रहता है, जिसने नारी विमर्श के बारे में भ्रांतियों को दूरकर उसके सत्य को स्थापित ही नहीं किया बल्कि नारी-विमर्श की एक स्वस्थ व्याख्या भी की है। इन चिंतकों में मन्नू भंडारी की अग्रणी भूमिका रही है, जिन्होंने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से नारी जीवन के अनेक प्रश्नों पर तर्क संगत बात की है। वर्तमान में नारी विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा हो गया है। यह आज के समय में एक तरह से अब तक कि परिभाषित नारी की भूमिका को बदलने वाला विमर्श भी है। इस विमर्श ने शताब्दियों से चली आ रही नारी की छवि को तोड़कर उसे आधुनिक समाज में एक अलग स्थान दिया है। नारी-विमर्श पुरुष विरोधी झंडा लेकर आगे चलने वाला नकारात्मक विमर्श नहीं है। बल्कि एक स्वस्थ मानवीय दृष्टिकोण है। इसकी व्यपकता और विस्तार को स्पष्ट रूप से विवेचित और स्थापित करने वाला साहित्य मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में आया है।

आधुनिक साहित्य में मन्नू भंडारी का अप्रतिम योगदान है। इनके साहित्य में समाज सापेक्षता, अन्याय-अत्याचार का विरोध, सार्थक मूल्यों की रक्षा का प्रयत्न दृष्टिगत होता है। कर्म और संघर्ष में उनका विश्वास है। लेखिका व्यवसायिक प्रतिबद्धता से अलग रह कर समसामयिक लोक जीवन से जुड़ी रही है और उन्होंने जीवन की कठिन चुनौतियों को स्वीकार किया है।

मन्नू भंडारी की कहानियां समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में व्याप्त विडंबनाओं और विद्रूपताओं से सम्बन्धित हैं। इन्होंने नारी जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है। लेखिका ने माँ, पत्नी, पुत्री, प्रेमिका आदि के रूप में नारी जीवन में आने वाली समस्याओं को जीवंत रूप में व्यक्त किया है।

मन्नू भंडारी ने अपने कथा साहित्य में पुरुष की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। नारी सब कुछ होकर भी नारी है और नारी को एक साथी चाहिए, एक सहारा चाहिए, परिवार चाहिए और बच्चे चाहिए। इसके अतिरिक्त नारी में विवाह के प्रति प्रतिरोध भी उनके कथा साहित्य में चित्रित हुआ है।

आज नारी शोषण और अत्याचार का विरोध भी करती है। वैयक्तिक अस्मिता की रक्षा के लिए नारी संघर्ष करती है। नारियों ने जहाँ उच्च पदों पर आसीन होकर देश को गौरवान्वित किया है वहीं उनका आज भी दैहिक और मानसिक शोषण हो रहा है। मन्नू भंडारी ने स्त्री लेखन को एक नया अर्थ देते हुए स्त्री अस्मिता के प्रश्न को बड़ी गंभीरता के साथ चित्रित किया है। लेखिका पारंपरिक स्त्रीत्व से मुक्त करके नारी को वैयक्तिक अस्मिता का बोध कराना चाहती है, जिससे उनसे सर्वदा एक बोल्डनेस विद्यमान रहे।

आज की नारी महत्वाकांक्षाओं, अपेक्षाओं, अंतर्द्वंदों और तनावों में जूझ रही है। नारी, मुक्ति की कामना करती है किंतु परम्परागत संस्कारों को त्यागकर कदापि नहीं। मन्नू भंडारी की नायिकाएं त्रासदी से गुजरती हैं और समझौतावादी हैं। पति के विवाहेतर प्रेम संबंधों पर रंजना परम्परागत भारतीय नारी की तरह आँसू नहीं बहाती बल्कि पति अमर से स्वयं को मुक्त कर लेती है। लेखिका ने अमला के रूप में परित्यक्ता नारी का चित्रण किया है। वह मानसिक अंतर्द्वंद्व के कारण आत्महत्या का मार्ग चुनती है। वह पत्नी, प्रेयसी, मित्र आदि बनी किन्तु असफल ही रही। 'स्वामी' उपन्यास की मिनी आधुनिक नारी है। जिसमें नारी मुक्ति का प्रश्न उसकी स्वतंत्रता के साथ समाप्त हो जाता है। अंत में मन्नू भंडारी की मिनी भारतीय पत्नी की भूमिका को आदर्श रूप प्रदान करती है। 'आपका बंटी' उपन्यास की शकुन चेतना सम्पन्न ऐसी नारी है जो परिवेश से टकराती है। वो व्यक्ति को बदलती है, व्यवस्था को नहीं। 'महाभोज' उपन्यास की रुक्मा गांव की शिक्षित एवं जागरूक नारी है, जो बिसू के विचारों से प्रभावित होकर गांव की अशिक्षित

महिलाओं के प्रति जागरूक करती है। अतः मन्नू भंडारी का कथा साहित्य नारी विमर्श, नारी मुक्ति का प्रस्थान बिंदु माना जाता है।

आधुनिक युग का प्रेम व्यवसायिक, शारीरिक संबंधों वाला, विवाहोत्तर संबंधों वाला, प्रेमी से विवाह की अनिवार्यता न होने वाला, लिव इन रिलेशन की परंपरा आदि के रूप में हो गया है। 'यही सच है' कहानी की दीपा प्रेमी से निराश होकर दूसरे व्यक्ति संजय से प्रेम करने लगती है। दीपा में अंतर्द्वंद्व है कि निशीथ और संजय दोनों में किसके सच को स्वीकार किया जाय। दीपा अपने फूलदान रूपी मन में कभी निशीथ को सजती है तो कभी संजय को। 'गीत का चुम्बन' कहानी में संस्कारों और परंपराओं में जकड़ी आधुनिक नारी के प्रेम की कुंठाओं को चित्रित किया है वहीं नैतिक-अनैतिक के संघर्ष की अभिव्यक्ति भी की है। इस कहानी की नायिका कनिका और कवि निखिल में प्रेम हो जाता है। निखिल स्वच्छन्द प्रेमी है और कनिका परंपराओं तथा संस्कारों में जीने वाली नारी है, वह अपने अनुसार अपना जीवन जीना चाहती है। और इस कहानी में आकांक्षा के द्वंद की कहानी है जो पुराने और नवीन संस्कारों के बीच छटपटाती है। 'एक कमजोर लड़की की कहानी' नामक कहानी में समाज की ऐसी नारी को दर्शाया गया है जो पति और प्रेमी दोनों के प्रति ईमानदार रहने में असफल हो जाती है। इस कहानी में रूप मामा के मुँहबोले बेटे ललित से प्रेम करती है किंतु विवाह होने पर विरोध नहीं कर पाती है। 'अभिनेता' कहानी में प्रेम में ठगी गई अविवाहित नारी की संवेदना व्यक्त हुई है। इस कहानी की नायिका रंजना दिलीप ओझा से प्रेम करने लगती है जो विवाहित है और एक बच्ची का पिता भी है, लेकिन वह रंजना से ये बात छुपाई थी और अंत में यह भी पता चलता है कि दिलीप और एक लड़की को भी ऐसे ठग रहा था। 'स्त्री सुबोधिनी' कहानी की सुबोधिनी आधुनिक नारी है जो अपने विवाहित बाँस शिंदे के प्रेम में फस जाती है, जो एक बच्चे का पिता है। 'आते जाते यायावर' की मिताली सहपाठी से प्रेम करती है तथा शारिरिक संबंध भी स्थापित कर लेती है। 'एक बार और' कहानी की बिन्नी आधुनिक युवती है जो होटल में प्रेमी कुंज की पत्नी बनकर रहती है लेकिन कुंज विवाह मधु से करता है। 'दीवार बच्चे और बरसात' में शिक्षित नारी की त्रासदी चित्रित है वहां विवाहित नारी की वेदना और एकाकी जीवन को भी अभिव्यक्त किया गया है। 'घुटन' कहानी में विवाहित और अविवाहित नारियां की परिस्थिति घुटन का कारण बनती है, इस कहानी की मोना ऐसी युवती है जो विषम परिस्थिति में घुटने टेक देती है। मन्नू भंडारी अपनी कहानियों में पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था और विसंगतियों को बेनकाब करती है।

मन्नू भंडारी की कहानियाँ संयुक्त परिवार के बीच पनपती हैं। आज की नारी पारिवारिक समस्याओं में उलझी होने के कारण आधुनिक परिवेश में जीना चाहती है, इसलिए परंपरा को तोड़कर जी रही है। मन्नू भंडारी की 'आकाश के आईने' कहानी में संयुक्त परिवार में घुटती नारी

का चित्रण है तो 'इनकम टैक्स और नौद' कहानी में प्राचीन और नवीन विचारों में द्वंद है। 'छत बनाने वाले' कहानी में ताऊ रूढ़िवादी है, इसीलिए ताई घूँघट में ढकी मूक प्रतिमा है। 'संख्या के पार' कहानी में संयुक्त परिवार के दुःख दर्द का वर्णन है, जिसे सहने के लिए नारी विवश है। मन्नू भंडारी का विचार है कि आधुनिक जीवन की समस्याओं का समाधान परम्परागत मूल्यों से नहीं प्रत्युत आधुनिक मूल्यों से ही हो सकता है।

स्वतंत्र भारत में पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा से नारी जागरूक हुई तथा उसने कामकाजी बनकर अपने व्यक्तित्व को निखारा है। वर्तमान में कामकाजी नारी घर और नौकरी का दोहरा दायित्व संभालती है तो अनेक प्रकार की समस्याएं आती हैं। मन्नू भण्डारी ने कामकाजी नारी के व्यक्तित्व को उजागर किया है जिसमें उनके संघर्ष का चित्रण किया गया है। 'क्षय' कहानी में कुंती अविवाहित कामकाजी नारी है जो किसी भी कीमत पर अपने सिद्धांतों, आदर्शों का परित्याग नहीं करती। 'घुटन' कहानी की अविवाहित कामकाजी नारी मोना पारिवारिक दायित्व के कारण दम तोड़ देती है। इसी प्रकार 'नई नौकरी' की रमा 'कमरे कमरा और कमरे' की नीलिमा आदि ऐसी कामकाजी नारियां हैं जिनका जीवन एक त्रासदी है। मन्नू भण्डारी ने 'नशा' और 'रानी माँ का चबूतरा' कहानी में परिश्रमी नारी के संघर्ष को प्रस्तुत किया है।

मन्नू जी ने आर्थिक परिस्थितियों से जूझती नारी का चित्रण भी प्रस्तुत किया है जो परिवार के दायित्व को उठाते हुए टूट जाती है। 'रानी माँ का चबूतरा' जैसी कहानी में मजदूर नारी को स्वाभिमान और उसकी आत्मनिर्भरता को दर्शा कर नारी के उज्ज्वल चरित्र को व्यक्त किया है। इस कहानी में गुलाबी आत्मविश्वास से भरी है, वह अपनी वैयक्तिक अस्मिता के लिए पति और समाज से टक्कर लेती है।

मन्नू जी ने अपनी कहानियों में नारी जीवन के विविध पहलुओं को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। मन्नू जी की कहानियों में धर्म, संस्कृति, राजनीति, पुरुष प्रवृत्ति आदि से जुड़े प्रश्न भी उभरे हैं। यही नहीं इन्होंने नगरीय और ग्रामीण जीवन को भी सजीव रूप में चित्रित किया है। 'इस के इंसान' कहानी में धार्मिक विडंबना को उजागर किया है। जिसमें नारी शोषण और अन्याय का पर्दाफाश किया गया है। 'शमशान' कहानी में पुरुष की स्वार्थ भावना को व्यक्त किया गया है।

मन्नू भंडारी ने राजेन्द्र के संबंध में यह स्वीकार किया है कि पति को पत्नी के रूप में एक नर्स चाहिए, जो पति की सेवा करती रहे, बदले में पति से कोई अपेक्षा न करे। स्त्री विमर्श के समर्थक राजेन्द्र का असली रूप देखकर लेखिका को आश्चर्य होता है। यह आत्मकथा लेखिका के व्यक्तिगत और लेखकीय जीवन का कटु और मधुर यथार्थ का स्पष्ट आईना है। मन्नू भण्डारी की आत्मकथा में मध्यवर्गीय समाज की नारी की विडंबनाओं, तनावों, कटुताओं और समस्याओं

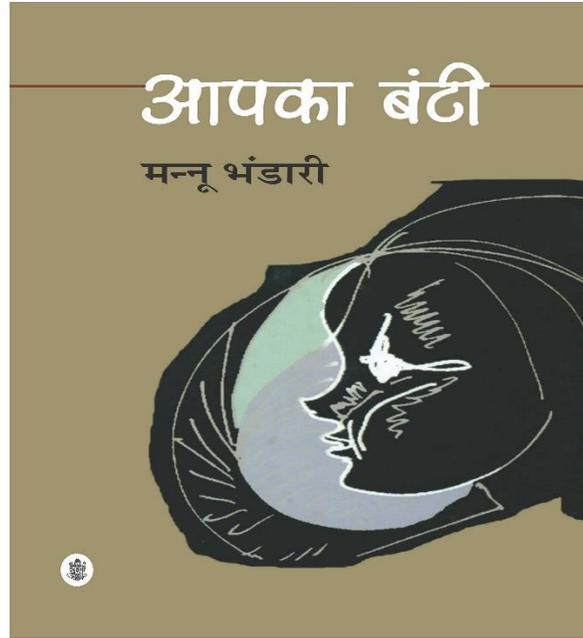
का चित्रण है। मन्नू भण्डारी स्वयं को नारी वादी लेखिका नहीं मानती पर नारी जीवन की व्यथा कथा ही लिखती है। मन्नू भण्डारी ने अपने परिवार में पिता को पुरुषसत्तात्मक स्थिति में और माता को पति और बच्चे की इच्छा पूर्ति करने वाली मशीन की तरह देखा है। इस प्रकार परिवार में लिंग भेद बना रहता है।

स्त्री आज भी पत्नी, माँ, बहन, चाची, ताई, बुआ और भाभी आदि रिश्तों से पहचानी जाती है। जबकि उसकी भी स्वतंत्र सत्ता है, उसकी अपनी अस्मिता है और वह समाज की जीवंत इकाई है। निर्णय लेने का अधिकार केवल पुरुष को ही नहीं बल्कि नारी को भी है। आज नारी विमर्श में परिवर्तन आया है क्योंकि आज नारी शिक्षित है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र है तथा उच्च पदों पर कार्यरत है। फिर भी स्त्री का स्थान दोगुना दर्जे का है। सामंती संस्कार की भावना पुरुष में है इस भावना से पुरुष जब तक मुक्त नहीं होगा तब तक स्त्री को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। अतः नारी विमर्श का एक मात्र उद्देश्य नारी को संघर्ष करने की प्रेरणा, प्रोत्साहन और शक्ति देना है।

मन्नू भंडारी आधुनिक हिंदी कथा साहित्य के उन गिने-चुने जागरूक तथा संवेदनशील कथाकारों में हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में 'नारी जीवन' का सशक्त और यथार्थ चित्रण किया है। मन्नू भंडारी नारी की दशा एवं दिशा का मार्मिक चित्रण कर पुरुष के वर्चस्ववादी समाज में नारी की मुक्ति के सवाल को गंभीरता के साथ उठती है। उन्होंने नारी-विमर्श को एक नया अर्थ देते हुए नारी अस्मिता के प्रश्नों को बड़ी गंभीरता तथा मुखरता के साथ चित्रित किया है। इसलिए आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में नारी-विमर्श को गंभीरतापूर्वक स्थापित करने का श्रेय मन्नू भंडारी को दिया जा सकता है। उन्होंने बहुत ज्यादा नहीं लिखा पर जो लिखा है वो तन्मयता, गहरी संलग्नता और ईमानदारी से लिखा है। उसमें 'नारी-जीवन' का यथार्थ सहजता आत्मीयता और बारीकी से झलकता है। मन्नू भंडारी ने इसीलिए तो कम लिखकर भी उच्च कोटि के साहित्यकारों में स्थान बना लिया है। मन्नू भंडारी का कथा-साहित्य एवं संसार वास्तव में उच्च नारी-विमर्श में सम्बन्ध में अत्यंत ही उच्च कोटि का माना जाता है।

इंटरनेट से संगृहित





‘आपका’ बंटी में स्त्री विमर्श

आपका बंटी मन्नू भंडारी का एक बहु चर्चित उपन्यास है। जिसको उन्होंने सन् 1970 में लिखा था। कथानक के शीर्षक से ये पता चल जाता है कि बंटी इस कथा का मुख्य पात्र है, परंतु कथानक को पढ़ने पर ये कहना मुश्किल हो जाता है कि यह कहानी बंटी की है या उसकी माँ शकुन की? क्योंकि वे दोनों एक दूसरे से ऐसे उलझे हैं कि त्रासदी सभी की यातना बन जाती है। अतः बंटी के साथ साथ शकुन का भी चरित्र पाठकों के सामने दृढ़ रूप से उभर कर आता है।

पुरुष प्रधान समाज में शकुन एक स्वाधीन, आत्मनिर्भर, संवेदनशील नारी के रूप में उपस्थित होती है। बंटी का उसने दीर्घ 9 साल तक एकाकी पालन पोषण किया। पति अजय किसी अन्य नारी के प्रति आकर्षित हो कर उसे छोड़ कर चला जाता है। बंटी को लेकर उसके मन में एक आशा जगती है कि शायद बंटी के ही माध्यम से उसका पति उसके पास वापस लौट आए। किन्तु ऐसा नहीं होता, उसकी 9 साल की तपस्या व्यर्थ हो जाती है, जब अजय वकील चाचा के हाथों दस्तखत किए हुए तलाक के कागज भेजता है। फिर वकील चाचा की वो बात,

"ज़रा आज से 8/9 साल बाद कि सोचो जब बंटी की अपनी ज़िंदगी होगी, अपने स्वतंत्र संबंध होंगे। अपनी इच्छाएँ और अपनी महत्वाकांक्षाएँ होंगी.... तब तुम्हारा क्या होगा?"

उसे सही भी लगा और चिंता का कारण भी बना। तब उसने अपनी जीवन की नई शुरुआत करने की ठानी ।

केवल अजय को पा सके, इस लिए शकुन बंटी को अपने साथ नहीं रखा था, वरन् उसके पीछे एक और कारण था उसका ममत्व। बंटी को लेकर वो बहुत सतर्क थी। उसे वो सारी चीजें दी, प्यार दिया जिससे बंटी खुश रह सके। लेकिन नहीं दे पाई तो केवल उसके पिता का प्यार। जिसके कारण बंटी बार बार अपने पिता से मिलने के लिए उतावला होता जा रहा था। लेकिन पिता के साथ उसका इतना गहरा संबंध नहीं बन पाता, जितना माता के साथ। इसका कारण यह है कि पिता महीने में एक दो बार आते थे और माँ उसके साथ हमेशा से ही है। इसीलिए अजय के कोलकाता बुलाने पर वो उसको माना कर देता और कहता है -

" मम्मी को छोड़कर मैं नहीं जा सकता। "

शकुन अपने बेटे को लेकर बहुत संवेदनशील एवं भाबुक भी है, जो एक क्षण के लिए उसे अपने से दूर नहीं करना चाहती थी। यूं तो बंटी एक बालक था लेकिन पिता का अभाव और माँ की खुशी के लिए उसे अपने उम्र से ज्यादा समझदार बनना पड़ा। यही बात शकुन को व्यथित करती है। इसके संबंध में वकील चाचा ने बोला भी था -

" स्कूल के अलावा बंटी सारे दिन तुम्हारे साथ या तुम्हारी उस फूफी के साथ रहता है। तुम्हारे यहाँ ज्यादा तर महिलाएं ही आती होगी। यानी इसकी क्या कंपनी है?..... एक 8/9 साल के ग्रींग बच्चे के लिए यह तो कोई बात नहीं हुई। ही शुड गो लाइक ए बॉय, लाइक ए मैम। "

और डॉक्टर ने भी बहुत बोल्डली कहा था -

" यह तुम माँ बेटों के चूमना चाटना और गले में बाहें डालकर लिपटने वाला जो रवैय्या है, अब बन्द होना चाहिए। "

इसीलिए उसने न चाहते हुए भी बंटी से दूरी बनाए रखा। पर यह बात बंटी को हजम न हुई तो उसने हर मोड़ पर शकुन को गलत ठहराया। उसका बालक मन उसे ये सोचने पर मजबूर करता रहा कि उसकी माँ अब उसकी नहीं रही। फिर शकुन का डॉक्टर साहब से मिलना, उनके बच्चों से प्यार जताना उसे और भी दृढ़ बनाता रहा। शकुन के इस व्यवहार से न केवल बंटी का बालक मन बल्कि फूफी का प्रौढ़ मन भी समझने में नाकाम रहा।

क्या शकुन को अपने जीवन में आगे बढ़ने का अधिकार नहीं था? जब उसका पहला पति अजय अपने जीवन में आगे बढ़ चुका तो वो क्यों पीछे रहे? हर मनुष्य की अपनी भी कुछ इच्छा होती है जिसके अनुसार वो जीना चाहता है। नारी है तो क्या शकुन केवल त्याग करती रहे? दीर्घ 9 साल तक उसने बंटी के लिए अपनी भावनाओं का त्याग किया, ये क्या कम था? केवल सूरज डूब उग कर दिन और रात होने का एहसास नहीं कराता, उसके अतिरिक्त भी कुछ होता है। जीवन की मरुभूमि में एकाकी न चले बल्कि कोई इस राह में उसका हमसफ़र भी बने। इस सोच ने उसे आगे बढ़ने और डॉक्टर साहब से शादी करने के लिए प्रेरित किया। यह विवाह न सिर्फ शकुन अपने लिए वरन् बंटी को पिता का प्यार तथा एक भरपूर परिवार देने के उद्देश्य से भी करती है। पर बंटी इस बात को समझने में असफल रहा और अपने पिता के साथ चल

दिया ।

शकुन के मन में बंटी के लिए प्यार अवश्य है पर जब बंटी उसके नए जीवन पद्धति को न अपना सका, तो न चाहते हुए उसे दूर करना पड़ा। वह अजय का बेटा है और अजय की तरह वह भी शकुन से केवल समर्पण का भाव चाहता है। जो उसके लिए असंभव है अगर शकुन समर्पण कर पाती तो अजय आज उसके साथ होता। अब बंटी भी उसे दूर जाना चाहता है, और शकुन उसे नहीं रोकती। क्योंकि वो डॉक्टर से प्यार करने लगी थी। उम्र के 36 साल में वह उनके लिए कैशोर्य सा अनुभव करने लगी थी। और बंटी उसके प्यार में बाधक बन रहा था।

" बंटी को दरार ही बनना है तो मीरा और अजय के बीच में बने, अजय भी तो जाने कि बच्चे को लेकर किस तरह की यातना से गुजरना पड़ता है। "

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि वह अजय से एक तरह से बदला लेना चाहती थी।

ऊपर से चाहे शकुन जो सोचे लेकिन अंदर से वो बंटी को दूर जाने देना नहीं चाहती थी। उसे लगता था बंटी वापस लौट आएगा पर जब वो नहीं लौटता तो उसका मातृमन विह्वल हो उठता है।

इस कथा के माध्यम से मन्नु भंडारी ने बीसवीं शताब्दी के स्त्री विमर्श को सही धरातल पर खड़ा किया है।



पिंकी सिंह, +3 तृतीय वर्ष



“पंडित गजाधर शास्त्री” एक दृष्टि

मन्नू भंडारी जी के हर एक कहानी में उनके अपने अनुभव एवं मानवीय संवेदना उभर कर पाठकों के सामने आये हैं। उन्हीं अनुभव एवं संवेदना युक्त एक कहानी "पंडित गजाधर शास्त्री" पर दृष्टि डालते हैं।

इस कहानी में उन्होंने गजाधर शास्त्री नामक एक व्यक्ति से मुलाकात एवं उनसे जुड़ी कुछ खट्टी मीठी यादों का वर्णन किया है। घटना पूरी नामक एक स्थान का है, जहाँ लेखिका गर्मी की छुट्टियाँ बिताने के इरादे से गई और वहाँ उनका शास्त्री जी से सक्षात्कार हुआ। जो होटल में उनके बगल वाले कमरे में रहते थे। शास्त्री जी अपना परिचय एक लेखक के रूप में देते हैं जिनकी एक मात्र कहानी "अमीरी गरीबी" की चर्चा लेखिका से करते हैं। लेखिका के वर्णन से हमें पता चलता है कि शास्त्री जी का चरित्र एक अशांत समुद्र की भांति है जो कि अपने व्यवहार एवं बातों के माध्यम से सर्वथा उछल कूद मचाते हैं। वहीं लेखिका एक शांत तलाब की भांति सामान्य उत्सुकता के साथ उनकी बातें सुनती हैं। वो अलग बात है कि शास्त्री जी कभी उन्हें बोलने या उनके विचार प्रकट करने का अवसर मात्र भी नहीं देते ।

शास्त्री जी अपनी उस एक कहानी को लेकर इतने गर्वित हो गए थे कि वो उसकी चर्चा बार बार लेखिका के सामने करते थे जब कि लेखिका ने इस कहानी का नाम भी कभी नहीं सुना था। लेखिका के उस समय तीन कहानी संग्रह छप चुके थे पर फिर भी शास्त्री जी उन्हें साहित्य क्षेत्र में एक नई खिलाड़ी के रूप में स्वीकार करते हुए अपनी कहानी में उन्हें एक गौण पात्र के रूप में रखना चाहते हैं।

शास्त्री जी ने जगत के हर एक घटना में कहानी रचना की प्लॉट खोजते रहते थे। वो समुद्र में मांझी का हाथ पकड़ कर नहाती हुई लड़की हो या स्वयं लेखिका ही क्यों न हो। उनकी कहानी की संज्ञा भी कुछ अलग ही प्रकार की थी। जैसे वो कहते थे "जीवन ही कहानी के लिए है, कहानी जीवन के लिए है, जीवन ही कहानी है, कहानी ही जीवन है।" उनके अनुसार कहानी में जान डाल देने वाली एक युक्ति "कहानी कहानी न बनकर कहानी बन जाती है" जो केवल लेखिका को ही नहीं बल्कि हर किसी को अचम्भे में डाल देती है।

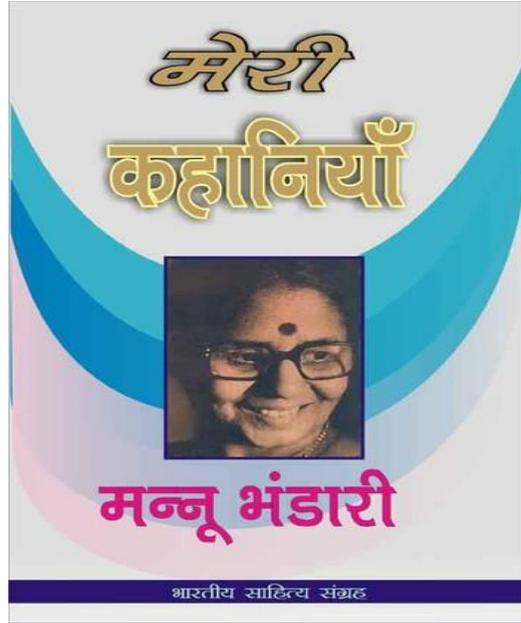
जो भी हो पंडित गजाधर शास्त्री जी हिंदी कथा साहित्य में भले ही कोई विशिष्ट स्थान प्राप्त न कर सकें लेकिन उनका आत्मविश्वास, कहानी के क्षेत्र में उनकी समर्पण की भावना लेखिका को प्रभावित कर देता है और लेखिका उनको अपनी कहानी का मुख्यपात्र के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनका अंतिम वाक्य -

" हीं जानता , शास्त्री जी ने भी मुझे अपनी कहानी में गौण पात्र का स्थान दिया या नहीं , क्योंकि मुख्य पात्र के लायक उन्होंने मुझे समझा ही नहीं, पर अनजाने ही वे मेरी कहानी के मुख्य पात्र बन बैठे। महान आत्मा थीं, बिना मुख्य पात्र का स्थान दिए उनके साथ पूरा न्याय भी तो नहीं होता"

इसे पूरी तरह से सही सिद्ध करती है ।



कादम्बिनी पंडा, +3 तृतीय वर्ष



मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी

मन्नू भंडारी हिंदी की सुप्रसिद्ध कहानीकार है। उनकी समस्त कहानियों में समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति के बारे में उल्लेख हैं। इसके साथ साथ उन्होंने नारी को अपनी कहानियों के केंद्र में रखा है। उन्होंने नारी जीवन के सभी पक्षों को अपनी कहानियों के माध्यम से उभारा है। मन्नू जी ने माँ, पत्नी, पुत्री, प्रेमिका आदि नारी के सभी रूप का कहानियों में उल्लेख किया है। नारी जीवन की हर समस्या को उन्होंने महसूस किया है। वे भी एक नारी हैं और नारी होने के नाते अपने युग में नारी की हर समस्या को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट किया है।

मन्नू भंडारी जी की 50 से भी अधिक कहानियाँ प्रकाशित हैं। सारी कहानियों की चर्चा हम नहीं कर सकते हैं, इसीलिए उनकी दो कहानी जैसे:- अभिनेता और स्त्री सुबोधिनी पर हम विचार प्रस्तुत हैं। इसमें आधुनिक नारी की त्रासदी के बारे में उल्लेख हैं।

आज की आधुनिक नारी की बात हम कहें तो वह इतना तेज भाग रही है कि वह आगे पीछे कुछ न सोच कर कदम उठा लेती है। हर काम में तेज होना अच्छी बात नहीं है कि बाद में पछताना पड़े। प्रेम प्रसंग के संदर्भ में जल्दबाज में निर्णय लेना कितना घातक हो सकता है, मन्नू जी यही बात इन दो कहानियों के माध्यम से बताना चाहती हैं।

अभिनेता

मन्नु भंडारी जी की इस कहानी का शीर्षक 'अभिनेता' तो है परंतु कहानी के आरंभ में एक अभिनेत्री के बारे में उल्लेख है, जो अभिनय कला में निपुण है। उसका नाम रंजना है। रंजना एक अभिनेत्री है, उसका रहन सहन बिल्कुल आम लड़की की तरह है, काम को छोड़कर वह न कहीं जाती थी, न किसी से मिलती थी, और फूँक-फूँक कर पाँव रखती थी। रंजना के पास कुछ अभाव न था, मगर फिर भी रंजना खुश न थी, कुछ तो था जो उसे भीतर ही भीतर खाए जा रहा था। रंगमंच में प्रेम का अभिनय करते करते वह थक गई थी। वह सोचती है कि कोई होता जिससे वह सचमुच प्रेम कर सकती।

और सचमुच ही उसको एक साथी मिल गया, उसका नाम दिलीप था।

अब यहाँ से एक ऐसे अभिनेता से हमारा परिचय होता है, जिसकी अभिनय कला को देख उसको असली कहें या नकली कहेंगे ये निर्णय लेना मुश्किल है।

दिलीप को अभिनय से नफरत है वह रंजना को भी अभिनय छोड़ देने को कहता था, दिलीप एकांतिक प्रेम में विश्वास रखता था। रंजना को नहीं पा सके तो व अपनी जान तक देने को तैयार था। रंजना को दिलीप का यह एकांतिक प्रेम बड़ा ही भला लगा। और उनके बीच ऐसे मिलना जुलना लगा रहा।

ऐसे ही कुछ दिनों बाद एक दिन जब दिलीप आया तो वह बहुत उदास और मलिन लग रहा था, रंजना ने पूछा तो पता चला कि दिलीप को किसी काम से बाहर जाना था और साथ में उसको 12 हजार रुपयों की जरूरत थी और रंजना ने उसको बड़े विश्वास के साथ रुपये दे दिये।

दिलीप के जाने के बाद तीन-चार दिन नियमित रूप से पत्र आते रहे, पर इसके बाद उसकी कोई खबर ही नहीं आई। रंजना घबरा गई और उसके घर की ओर निकल पड़ी। नौकर के पास भी कोई खबर नहीं थी। वह अंदर जाकर झाँकरी खोली तो एक नीले रंग के पत्रों पर उसकी नजर पड़ी और वह पढ़ने लगी। उसे पता चला कि दिलीप का किसी रेखा नाम की लड़की के साथ भी प्रेम संबंध है, और दूसरा पत्र पढ़ा तो पता चला कि वह शादीशुदा है। उसने अपनी इच्छा से विवाह किया था और एक बच्ची भी है। यह सब पढ़ कर रंजना अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रही थी। रंजना का माथा चकरा गया। और वहाँ से लौट आयी।

रंजना ने वापस आते हुए एक कागज पर लिखा....."मैं तो केवल रंगमंच पर ही अभिनय करती हूँ, पर तुम्हारा तो सारा जीवन ही अभिनय है। बड़े ऊँचे कलाकार और सधे हुए अभिनेता हो तुम मेरे दोस्त" !

स्त्री-सुबोधिनी

इस कहानी की नायिका सुबोधिनी जो एक अधिनिक नारी है, कामकाजी महिला है। सुबोधिनी को अपने बाँस से प्रेम हो गया। सुबोधिनी अपने तरफ से ईमानदारी और समर्पण के साथ बाँस शिंदे से प्रेम की थी। यह कहा जाए तो भूल नहीं होगा कि सुबिधिनी शिन्देमायी हो गई थी। और शिंदे की और भी संकेत बहुत साफ था और उनके और से प्यार की निमंत्रण भी बहुत खुला था। सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था।

इतने में सुबोधिनी को भयंकर झटका लगा और मालूम पड़ा कि शिंदे की एक बीवी और एक बच्चा भी था। पर शिंदे इस मैदान का पक्का खिलाड़ी था, वह ऐसी बातें करता था कि संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता। वह सुबोधिनी को कहा कि:- "पिता के दबाव में आकर की हुई शादी मेरे जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी बन गई है, बीवी के रहते भी मैं कितना अकेला हूँ"। सुबोधिनी उस बातों पर विश्वास कर लिया। वह ये भी न सोचा कि शिंदे की बीवी भी आखिर उसकी तरह एक स्त्री है, वह शिंदे को पाने के लिए कुछ भी कर सकती थी। और पुनः वह शिंदे के साथ पहले की तरह समर्पण के साथ संबंध बनाई रखी।

एक दिन शिंदे का तबादला हो गया, शिंदे की बीवी को उनके संबंधों के बारेमें पता चल गया था इसीलिए वह तबादला कर दिया था, परंतु सुबोधिनी समझ लिया था कि उसके लिए शिंदे तबादला हो गया। सुबोधिनी की आँखों में उसने ढेर सारे सपने भर दिया था। वह झुटे आँसू निकाल कर कह रहा था कि "सुबोधिनी ही शिंदे की प्राण है, शिंदे की प्रेरणा है"। कुछ दिन उनके बीच नियमित पत्र लेन देन हुई उसके बाद पत्र और मिलना भी बंद हो गया। वहां शिंदे दिनोदिन उन्नति कर रहा था यहां सुबोधिनी शिंदे की याद में उसकी बुरा हाल हो गई थी, सुबिधिनी को समझ आ गया की वह बुरी तरह ठगी गई हैं।

प्रेम के इस खेल में शिंदे सधा हुआ खिलाड़ी था और इस खेल की बाजी बड़ी होशियारी से शिंदे ने बांटी। अर्थात्, तुरुप का इक्का यानी घर....उसके पास, तुरुप का बादशाह यानी बच्चा....उसके पास, तुरुप की बेगम यानी बीवी और प्रेम करने के लिए प्रेमिका.....उसके पास, तुरुप का गुलाम यानी नौकर...चाकर, गाड़ी-बंगला..... उसके पास।

इन कहानियों में सुबोधिनी एवं रंजना आधुनिक नारी हैं जो अपने विवाहित बाँस के प्रेम पाश में फँस जाती हैं। उसको एक घर, पति और बच्चा चाहिए इसीलिए वह आगे पीछे विचार न करके प्रेम करने लगती हैं। दोनों कामकाजी महिला हैं, इसीलिए न घर का कोई अंकुश था न इस बात की संभावना की कहीं मेरा ठौर-ठिकाना लगा देंगे। इसीलिए वे दोनों ने ना तो पुरुषों का

आगे-पीछे जानने की कोशिश की और न अपने बारे में सोचने की कोशिश की। आँखें मूंद कर प्रेम की डगर पर चल पड़ी।

दिलिप के कुछ सवांद से उसका चरित्रांकन:- "मैं लड़कियों की नस-नस पहचानता हूँ, तुम्हें देखते ही तुम्हें पाने की लालसा मन में जाग उठी और इसीलिए मैं मुहं मोड़कर बैठ गया। मैं जानता था कि ज्यादा रुचि दिखाई नहीं कि तुम कतरा कर चल दोगी, लड़की उसी की और खिंचती है जो उसकी उपेक्षा करें।" इससे पता चलता है कि दिलीप किस किस्म की आदमी है। रंजना अभिनेत्री है, वह अपनी अभिनय जीवन में ऐसे कितने ही प्रसंग को लेकर रंगमंच पर अभिनय करती होंगी, ऐसे कई सारे डाइलॉग सुनती होंगी पर ये सब बातें दिलीप के मुहं से सुनने के बाद भी दिलीप को कैसे पहचान न सकी।

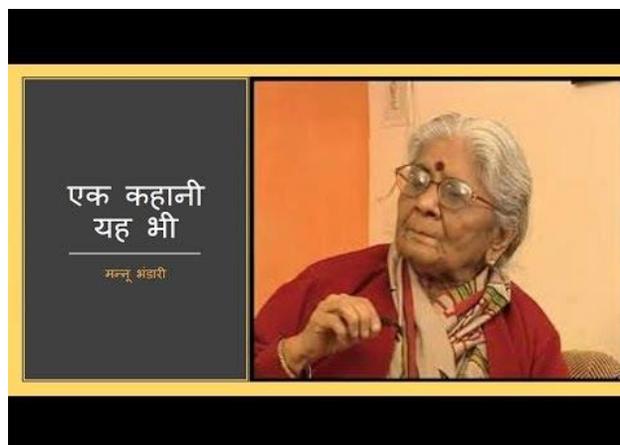
सुबोधिनी की गलती है कि वह जान बूझ कर उस राह पर गई जिस राह में भविष्य में उसको दुख सहना होगा। वह एक स्त्री होकर और एक स्त्री का पति छीनने की कोशिश में लगी रही, सब कुछ जानने के बाद भी।

अभिनेता कहानी में दिलिप रंजना को कितने ही स्वप्न दिखाता है और अंत में रंजना से पैसे लेकर उसको छोड़ देता है। स्त्री-सुबोधिनी कहानी में वैसे ही शिंदे ने सुबोधिनी को मीठी-मीठी बातों में फंसाया और उसके जरूरतें पूरी होने के बाद उसको छोड़ कर चला गया। कुछ लोगों ने प्रेम को इतना हल्का, झूठा और बाजारू बना दिया है कि प्रेम का असली रूप अपनी चमक खो देता है।

मन्नु भंडारी के शब्दों में - "भूलकर भी शादीशुदा आदमी के प्रेम में मत पड़िए। 'दिव्य' और 'महान' प्रेम की खातिर बीवी-बच्चों को दाँव पर लगाने वाले प्रेमवीरों और दो नावों पर पैर रखकर चलनेवाले शूरवीर बहुत मिल जाएंगे। जब तक चाहा प्रेम किया, मन भर गया तो लौट कर अपने खूँटे पर चले आया। न कोई डर, न घोटाला, जब प्रेम में लगा हो शादी का ताला"।



लिज़ा मिश्रा, +3 तृतीय वर्ष



“एक कहानी यह भी” में मानवीय संवेदना

मन्नू भंडारी जी का जन्म तो मध्यप्रदेश के भानपुरा गांव में हुआ था। लेकिन उनकी यादों का सिलसिला शुरू होता है अजमेर के ब्रम्हपुरी मोहल्ले के उस दो मंजिल मकान से। मन्नू जी का विवाह के पहले का जीवन तो बहुत खुशहाल था परंतु राजेन्द्र जी से विवाह करने के बाद उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन्होंने 22 नवम्बर को गोविंद जी कनोडिया के लॉन में विवाह के रजिस्ट्रर पर दस्तखत किए थे, मालाएँ बदली थी। मन्नू जी ने बहुत सपने देखे थे, इस जिंदगी को लेकर, बहुत उमंगें भी थी। लेकिन जल्दी ही राजेन्द्र जी की लेखकीय अनिर्वारियों और इस जीवन से उनकी अपेक्षाओं का टकराव शुरू हो गया, जो फिर कभी सम पर आया ही नहीं। मन्नू भंडारी जी का कहना है कि - विवाह के बाद उस पर किसी तरह की कोई जिम्मेदारी नहीं उठाई थी, लेकिन मानसिक रूप से उसके लिए पूरी तरह तैयार होकर आई थी। केवल तैयार ही नहीं, भरपूर उमंग उत्साह भी था, साथ ही यह उम्मीद और आश्वासन भी कि सह - जीवन के सुख-दुःख और जिम्मेदारियां भी मिल बांट कर ही उठाएंगे। पर जिंदगी शुरू करने के साथ ही लेखकीय अनिर्वारियता के नाम पर राजेन्द्र ने समानांतर जिंदगी का आधुनिकतम पैटर्न थमाते हुए जब कहा कि - "देखो छत जरूर हमारी एक होगी लेकिन जिंदगियां अपनी-अपनी होंगी बिना एक-दूसरे की जिंदगी में हस्तक्षेप किए बिल्कुल स्वतंत्र, मुक्त और अलग।" मन्नू जी यह बात सुन कर अवाक रह गयी। राजेन्द्र जी के दिमाग में एकाएक समानांतर जिंदगी की जो अवधारणा पैदा हुई है, निश्चित ही उसके सूत्र कहीं और ही हैं। पर असलियत को ईमानदारी से स्वीकार करने का साहस तो राजेन्द्र में कभी रहा ही नहीं। इस लिए अपने हर झूठ, अपनी हर जिद, और अपनी हर नाज़ायज हरकत को ढकने के लिए आदत से मजबूर राजेन्द्र जी हमेशा कोई ना कोई ऐसा सूत्र ढूँढ ही लेते हैं। कभी अधुनिकता के नाम पर तो कभी लेखन के नाम पर तो कोई और

फलसफा गढ़ कर जो उन्हें सही सिद्ध कर दे। अपनी-अपनी जिंदगी का जो बटवारा हुआ उसमें घर की सारी जिम्मेदारियां और समस्याएं, आर्थिक से लेकर दूसरी तरह की सब मन्नू जी के जिम्मे थी, जिस में उन्हें राजेंद्र जी की दिलचस्पी की ही नहीं सहयोग की भी जरूरत रहती थी। "उनके अधिकार-क्षेत्र में कभी भी न झांकने को, न किसी तरह की दिलचस्पी लेने की और न ही कोई हस्तक्षेप करने की उदारवादी मुद्रा ओढ़कर एक बड़ी वाजिब और तर्क-संगत अपेक्षा ये करते थे कि मैं भी इनके अधिकार-क्षेत्र में न कभी झाँकूँ न किसी तरह की दिलचस्पी लूँ।" इतनी ही नहीं मन्नू जी के संदर्भ में तो राजेंद्र जी ने सामान्य सी इंसानियत को दर किनार कर रखा था। बच्चे होने में कुल दो माह रह गए थे, तब भी राजेंद्र जी उन्हें सुशीला के यहां छोड़ कर रानीखेत चले गए थे। बच्चे के जन्म से सम्बंधित व्यवस्था भी राजेंद्र जी नहीं कर सकते थे। राजेन्द्र जी की धारणा पत्नी की भूमिका के बारे में विशिष्ट ही नहीं, सचमुच चौंकाने वाली थी उनके हिसाब से पत्नी को एक नर्स की भांति होना चाहिए जो सिर्फ पति की सेवा करे, बदले में उससे अपेक्षा कुछ न करें।

अपनी इस धारणा को राजेंद्र जी ने धर्मयुग में प्रकाशित एक परिचर्चा में पत्नी को एक नर्स की भांति होना चाहिए, शीर्षक से निःसंकोच भाव से व्यक्त भी किया था। राजेंद्र जी तो अपने बेटी टिंकू से बहुत प्रेम करते थे, फिर भी जब सात-आठ साल की उम्र में टिंकू को मीजल्स निकली, मन्नू जी टिंकू को लेकर डॉक्टर के पास गयी, डॉक्टर ने मात्र एक खुराक दे कर कहा कि, कल सवेरे तक इसकी सारी छाती और चेहरा दानों से भर जाएगा पर घबराना मत। सवेरे दूसरी दवाई ले जाना, वह धीरे- धीरे सब साफ कर देगी। दूसरे दिन टिंकू की हालत बहुत खराब हो गई थी। तब राजेन्द्र जी कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे

तब मन्नू जी ने कहा कि - "पहले टिंकू की दवाई दे जाएं फिर कहीं जाएं तो जाएं।" राजेन्द्र जी ने कहा - "साहित्य अकादमी की एक बहुत ही जरूरी मीटिंग है, वैसे ही लेट हो गया हूँ, कुसुम स्कूल से आए तो तुम उससे दवाई मँगवा लेना।" बच्ची की ऐसी हालत देखकर भी उन्हें न कोई परेशानी हो रही थी न चिंता। राजेन्द्र जी बच्ची को इस हालत में छोड़ कर मन्नू जी से झूठ बोल कर उषा प्रियंवदा से मिलने चले गए थे। जब यह बात मन्नू जी को पता चली तो उनके मन में एक प्रश्न यह उठा कि ये पिता तो बाद कि बात है पहला प्रश्न उठा- ये इंसान भी है? ऐसी ही बहुत सी घटना से मन्नू जी उब चुकी थी, उनके जिंदगी में सारी खुशफहमी को ध्वस्त करते हुए कुछ ऐसा घटा की उन्हें अलग होने का निर्णय लेते हुए कहा कि - "बस बहुत हुआ.... अब साथ चल पाना बिल्कुल- बिल्कुल सम्भव नहीं है।" परंतु राजेंद्र जी उनसे अलग होना नहीं चाहते थे।

बारह साल मन्नू जी ने अपने को राजेंद्र जी से पूरी तरह अलग कर लिया था, इसके बावजूद संबंध पूरी तरह टूटा नहीं। राजेंद्र जी के फोन करने, बार-बार मिलने एवं बातचीत ने इस संबंध

के कुछ सूत्रों को बचाए रखा। एक बार साहित्य अकादमी का कोई कार्यक्रम चल रहा था और यह सूचना मिली कि इंदिरा गांधी के अंगरक्षकों में से ही किसी ने उन पर गोलियां चलाई और उन्हें तुरंत मेडिकल इंस्टीट्यूट ले जाया गया था। शाम को मृत्यु की सूचना मिलते ही आशंकाओं के हकीकत में बदलते ही शुरू हुए दंगे, जिन्होंने दूसरे दिन तो भयंकर रूप धारण कर लिया। मारने-मरवाने वाले कोई, पर झेला तो न जाने कितने बेगुनाहों ने भी। अगले दिन शहर में कर्फ्यू लग गया। एक दिन बाद मन्नू जी के समाज-सेवी मित्र रेणुका मिश्रा का फ़ोन आया कि कुछ लोगों को और खाने का सामान जितना भी हो सके इकट्ठा करके तैयार रहिए त्रिलोकपुरी जाना है। वहाँ पर मन्नू जी और तीन-चार लोगों ने चाय बनाने का जिम्मा लिया था। थाने के पीछे पत्थर जोड़ कर चुल्हा बनाया। ढेर सारी लकड़ियां जलाई और थाने से ही मिले एक बड़े से भगौने में पानी चढ़ा दिया तभी ध्यान गया कि साथ आए सामान में चीनी और चाय की पत्ती तो हैं पर दूध के डिब्बे तो हैं ही नहीं। तभी थाने के ही किसी सिपाही ने बताया कि पास में ही खटाल है। कर्फ्यू की वजह से दूध भी सारा यही पड़ा होगा पर वे लोग देंगे नहीं। क्योंकि मार-काट करने वाले भी तो यही लोग थे। मन्नू जी अपनी एक छात्रा के साथ वहां जाती हैं। और दूध मांगती हैं। वे दूध दे देते हैं और जब मन्नू जी उन्हें हिसाब करने के लिए पर्स निकालती हैं तब उन्होंने कुछ पूछे इसके पहले ही हाथ से नकार करते हुए वह बोला- रहने दीजिए रहने दीजिए, यह मत समझिए कि हम इंसान नहीं हैं। इंसान तो हम भी हैं, पर...। मन्नू जी पूछने लगी कि- “अच्छा बताइए कि कल यहां हुआ क्या? क्यों इतनी बर्बरता से...” तब वे गुस्से से बोलने लगे, “पूछिए इनसे कि क्या करते रहे ये लोग सारी रात? भांगड़े हुए हैं, शराबे उड़ी है, दिये जले हैं, आतिशबाजी होती रही। हमारी माँ को धोखे से मार कर ऐसा जश्न मनाया है इन लोगों ने तो साहब हमारी रगों में भी पानी तो नहीं बहता है ना। बर्दाश्त से बाहर हो गई तो आ गए गांव से सारे लोग ओर ठिकाने लगा दिया। यही होना था इन लोगों के साथ।” मन्नू जी वहां से चली आयी और अपने हाथ में चाय से भरी बड़ी सी एल्यूमिनियम की केतली थी, और एक लड़की ने अपनी चुन्नी में खाने की कुछ चीजें भर रखी थी, और उसे एक एक के पास जाकर बांट रहे थे। थोड़ी दूर में एक बुजुर्ग सरदार जी खड़े थे। मन्नू जी उनके पास जाकर बोली - “चाय ले लीजिए सरदार जी थोड़ा सुकून पहुँचेगा।” तब सरदार जी कहते हैं- “तुम चाय से सुकून देने आई हो बिब्बी, अरे जिस बाप की आँखों के सामने उसके तीन-तीन जवान बेटों को सफों से बांध कर जिंदा जला दिया गया हो उसे तुम्हारी चाय सुकून देगी?” उनकी ऐसी भयंकर त्रासदी... “तुम्हीं बताओ बिब्बी.... कितनी बार उजड़ेंगे ओर कितनी बार बसेंगे?” सरदार जी का यह प्रश्न और उनका वह पथराया हुआ चेहरा और कभी कभी उस चेहरे को काटती हुई क्रोध की धधकती ज्वाला से सूखी आँखों से बरसता ये प्रश्न- “धोखे से हमारे माँ को मार कर ऐसा जश्न मनाएंगे ऐसा जश्न?” यही दिल दहला देने वाली यातना मन्नू जी के मन में खुदा हुआ है। इस प्रसंग को मन्नू जी ने हंस में छपने के लिए दे दिया। यह छपा और प्रतिक्रिया में आए दो पत्रों ने मन्नू

जी को बड़ी लागत-मलामत भी की। पाठकों को लगा कि वे जैसे परोक्ष रूप से दंगों का समर्थन ही कर रही हैं। दंगों का समर्थन- सरदारों पर जैसे बर्बर अत्याचार हुए, उसका समर्थन। मन्नू जी ने इन प्रसंगों में उन दोनों सरदारों के साथ जैसे-जैसे अमानवीय और दिल दहला देने वाले अत्याचार हुए थे, इसी प्रसंगको स्पष्ट करने की कोशिश की है।

अतः निष्कर्ष स्वरूप मन्नू भंडारी जी अपने जीवन के बारे में कहते हैं- “सब लोगों की धिक्कार और फटकार अपनी जगह और मुख्यतः लेखकीय यात्रा पर केन्द्रित मेरी जिंदगी की यह कहानी अपनी जगह।“



सोनिया नायक, +3 तृतीय वर्ष

मौसी मां, या मां मौसी!

लगभग दस साल की उम्र तक मुझे यही नहीं मालूम था कि मेरी असली मां कौन है। मन्नू भंडारी या सुशीला भंडारी. मेरा जन्म कलकत्ता में हुआ था। मम्मी कॉलेज में पढ़ाती थीं इसलिए मेरा पूरा दिन मेरी मौसी यानी सुशीला भंडारी के साथ ही गुज़रता। जब पापा और मम्मी दिल्ली शिफ्ट हुए तो यह तय किया गया कि जब तक मैं स्कूल जाने की उम्र की नहीं हो जाती, मुझे कलकत्ते ही रहने दिया जाए। और इस प्रकार मेरे बचपन के दिन मौसी के साथ गुज़रे। जिन्हें मैं आज भी मम्मी ही बुलाती हूं। जब दिल्ली के एक स्कूल में मेरा दाखिला हो गया तो मां (मन्नू भंडारी) मुझे दिल्ली ले आईं। मैं तो यही समझती रही कि मेरा स्कूल दिल्ली में होने के कारण मुझे सुशीला मम्मी की छोटी बहन के साथ रहना पड़ेगा. हर गर्मी की छुट्टियों में मैं कलकत्ता जाती अपनी सुशीला मम्मी के पास। पर दिल्ली में मेरी इस दूसरी मां ने मुझे इतना प्यार दिया कि मैं उन्हें भी मम्मी बुलाने लगी। और धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति पर पहुंच गई, जहां मुझे यह विश्वास होने लगा कि मेरी दो-दो माएं हैं। जैसे-जैसे बड़ी हुई, बात समझ में आने लगी कि मन्नू भंडारी ही मेरी मां हैं। खैर! अब यह दुविधा नहीं है कि मेरी मम्मी कौन है। दुविधा एक ही व्यक्ति के दो व्यक्तित्वों के बीच होती है। जिस मन्नू भंडारी के साथ मैंने स्कूल और कॉलेज के दिन बिताए हैं, दुविधा उनके और आज वाली मन्नू भंडारी के बीच है। दोनों में फ़र्क ही नहीं, ज़मीन-आसमान का अंतर है। इतना अंतर कि दोनों को एक व्यक्ति में समेटना, एक लेख में उतारना, बहुत ही कठिन काम है।

- रचना भंडारी



यही सच है

- मन्न् भंडारी

कानपुर

सामने आँगन में फैली धूप सिमटकर दीवारों पर चढ़ गई और कंधे पर बस्ता लटकाए नन्हे-नन्हे बच्चों के झुंड-के-झुंड दिखाई दिए, तो एकाएक ही मुझे समय का आभास हुआ। घंटा भर हो गया यहाँ खड़े-खड़े और संजय का अभी तक पता नहीं! झुँझलाती-सी मैं कमरे में आती हूँ। कोने में रखी मेज पर किताबें बिखरी पड़ी हैं, कुछ खुली, कुछ बंद। एक क्षण मैं उन्हें देखती रहती हूँ, फिर निरुद्देश्य-सी कपड़ों की अलमारी खोलकर सरसरी-सी नजर से कपड़े देखती हूँ। सब बिखरे पड़े हैं। इतनी देर यों ही व्यर्थ खड़ी रही; इन्हें ही ठीक कर लेती। पर मन नहीं करता और फिर बंद कर देती हूँ।

नहीं आना था तो व्यर्थ ही मुझे समय क्यों दिया? फिर यह कोई आज ही की बात है! हमेशा संजय अपने बताए हुए समय से घंटे-दो घंटे देरी करके आता है, और मैं हूँ कि उसी क्षण से प्रतीक्षा करने लगती हूँ। उसके बाद लाख कोशिश करके भी तो किसी काम में अपना मन नहीं लगा पाती। वह क्यों नहीं समझता कि मेरा समय बहुत अमूल्य है; थीसिस पूरी करने के लिए अब मुझे अपना सारा समय पढ़ाई में ही लगाना चाहिए। पर यह बात उसे कैसे समझाऊँ!

2.

मेज पर बैठकर मैं फिर पढ़ने का उपक्रम करने लगती हूँ, पर मन है कि लगता ही नहीं। पर्दे के जरा-से हिलने से दिल की धड़कन बढ़ जाती है और बार-बार नजर घड़ी के सरकते हुए काँटों पर दौड़ जाती है। हर समय यही लगता है, वह आया! वह आया!

तभी मेहता साहब की पाँच साल की छोटी बच्ची झिझकती-सी कमरे में आती है, "आंटी, हमें कहानी सुनाओगी?"

"नहीं, अभी नहीं, पीछे आना!" मैं रुखाई से जवाब देती हूँ। वह भाग जाती है। ये मिसेज मेहता भी एक ही हैं! यों तो महीनों शायद मेरी सूरत नहीं देखतीं, पर बच्ची को जब-तब मेरा सिर खाने को भेज देती हैं। मेहता साहब तो फिर भी कभी-कभी आठ-दस दिन में खैरियत पूछ ही लेते हैं, पर वे

तो बेहद अकड़ू मालूम होती हैं। अच्छा ही है, ज्यादा दिलचस्पी दिखाती तो क्या मैं इतनी आजादी से घूम-फिर सकती थी?

खट-खट-खट वही परिचित पद-ध्वनि! तो आ गया संजय। मैं बरबस ही अपना सारा ध्यान पुस्तक में केंद्रित कर लेती हूँ। रजनीगंधा के ढेर-सारे फूल लिए संजय मुस्कुराता-सा दरवाजे पर खड़ा है। मैं देखती हूँ, पर मुस्कुराकर स्वागत नहीं करती। हँसता हुआ वह आगे बढ़ता है और फूलों को मेज पर पटककर, पीछे से मेरे दोनों कंधे दबाता हुआ पूछता है, "बहुत नाराज हो?"

रजनीगंधा की महक से जैसे सारा कमरा महकने लगता है।

"मुझे क्या करना है नाराज होकर?" रुखाई से मैं कहती हूँ। वह कुर्सी सहित मुझे घुमाकर अपने सामने कर लेता है, और बड़े दुलार के साथ ठोड़ी उठाकर कहता, "तुम्हीं बताओ क्या करता? क्वालिटी में दोस्तों के बीच फँसा था। बहुत कोशिश करके भी उठ नहीं पाया। सबको नाराज करके आना अच्छा भी नहीं लगता।"

इच्छा होती है, कह दूँ - "तुम्हें दोस्तों का खयाल है, उनके बुरा मानने की चिंता है, बस मेरी ही नहीं!" पर कुछ कह नहीं पाती, एकटक उसके चेहरे की ओर देखती रहती हूँ उसके साँवले चेहरे पर पसीने की बूँदें चमक रही हैं। कोई और समय होता तो मैंने अपने आँचल से इन्हें पोंछ दिया होता, पर आज नहीं। वह मंद-मंद मुस्कुरा रहा है, उसकी आँखें क्षमा-याचना कर रही हैं, पर मैं क्या करूँ? तभी वह अपनी आदत के अनुसार कुर्सी के हत्थे पर बैठकर मेरे गाल सहलाने लगता है। मुझे उसकी इसी बात पर गुस्सा आता है। हमेशा इसी तरह करेगा और फिर दुनिया-भर का लाड़-दुलार दिखलाएगा। वह जानता जो है कि इसके आगे मेरा क्रोध टिक नहीं पाता। फिर उठकर वह फूलदान के पुराने फूल फेंक देता है, और नए फूल लगाता है। फूल सजाने में वह कितना कुशल है! एक बार मैंने यों ही कह दिया था कि मुझे रजनीगंधा के फूल बड़े पसंद हैं, तो उसने नियम ही बना लिया कि हर चौथे दिन ढेर-सारे फूल लाकर मेरे कमरे में लगा देता है। और अब तो मुझे भी ऐसी आदत हो गई है कि एक दिन भी कमरे में फूल न रहें तो न पढ़ने में मन लगता है, न सोने में। ये फूल जैसे संजय की उपस्थिति का आभास देते रहते हैं।

थोड़ी देर बाद हम घूमने निकल जाते हैं। एकाएक ही मुझे इरा के पत्र की बात याद आती है। जो बात सुनने के लिए मैं सवेरे से ही आतुर थी, इस गुस्सेबाजी में जाने कैसे उसे ही भूल गई!

"सुनो, इरा ने लिखा है कि किसी दिन भी मेरे पास इंटरव्यू का बुलावा आ सकता है, मुझे तैयार रहना चाहिए।"

"कहाँ, कलकत्ता से?" कुछ याद करते हुए संजय पूछता है, और फिर एकाएक ही उछल पड़ता है, "यदि तुम्हें वह जॉब मिल जाए तो मजा आ जाए, दीपा, मजा आ जाए!"

हम सड़क पर हैं, नहीं तो अवश्य ही उसने आवेश में आकर कोई हरकत कर डाली होती। जाने क्यों, मुझे उसका इस प्रकार प्रसन्न होना अच्छा नहीं लगता। क्या वह चाहता है कि मैं कलकत्ता चली जाऊँ, उससे दूर?

तभी सुनाई देता है, "तुम्हें यह जॉब मिल जाए तो मैं भी अपना तबादला कलकत्ता ही करवा लूँ, हेड ऑफिस में। यहाँ की रोज की किच-किच से तो मेरा मन ऊब गया है। कितनी ही बार सोचा कि तबादले की कोशिश करूँ, पर तुम्हारे खयाल ने हमेशा मुझे बाँध लिया। ऑफिस में शांति हो जाएगी, पर मेरी शामें कितनी वीरान हो जाएँगी!"

उसके स्वर की आर्द्रता ने मुझे छू लिया। एकाएक ही मुझे लगने लगा कि रात बड़ी सुहावनी हो चली है।

हम दूर निकलकर अपनी प्रिय टेकरी पर जाकर बैठ जाते हैं। दूर-दूर तक हल्की-सी चाँदनी फैली हुई है और शहर की तरह यहाँ का वातावरण धुँ से भरा हुआ नहीं है। वह दोनों पैर फैलाकर बैठ जाता है और घंटों मुझे अपने ऑफिस के झगड़े की बात सुनाता है और फिर कलकत्ता जाकर साथ जीवन बिताने की योजनाएँ बनाता है। मैं कुछ नहीं बोलती, बस एकटक उसे देखती हूँ, देखती रहती हूँ।

जब वह चुप हो जाता है तो बोलती हूँ, "मुझे तो इंटरव्यू में जाते हुए बड़ा डर लगता है। पता नहीं, कैसे-क्या पूछते होंगे! मेरे लिए तो यह पहला ही मौका है।"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ता है।

"तुम भी एक ही मूर्ख हो! घर से दूर, यहाँ कमरा लेकर अकेली रहती हो, रिसर्च कर रही हो, दुनिया-भर में घूमती-फिरती हो और इंटरव्यू के नाम से डर लगता है। क्यों?" और गाल पर हल्की-सी चपत जमा देता है। फिर समझाता हुआ कहता है, "और देखो, आजकल ये इंटरव्यू आदि तो सब दिखावा-मात्र होते हैं। वहाँ किसी जान-पहचान वाले से इन्फ्लुएंस डलवाना जाकर!"

"पर कलकत्ता तो मेरे लिए एकदम नई जगह है। वहाँ इरा को छोड़कर मैं किसी को जानती भी नहीं। अब उन लोगों की कोई जान-पहचान हो तो बात दूसरी है," असहाय-सी मैं कहती हूँ।

"और किसी को नहीं जानती?" फिर मेरे चेहरे पर नजरें गड़ाकर पूछता है, "निशीथ भी तो वहीं है?"

"होगा, मुझे क्या करना है उससे?" मैं एकदम ही भन्नाकर जवाब देती हूँ। पता नहीं क्यों, मुझे लग ही रहा था कि अब वह यही बात कहेगा।

"कुछ नहीं करना?" वह छेड़ने के लहजे में कहता है।

और मैं भभक पड़ती हूँ, "देखो संजय, मैं हजार बार तुमसे कह चुकी हूँ कि उसे लेकर मुझसे मजाक मत किया करो! मुझे इस तरह का मजाक जरा भी पसंद नहीं है!"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ता है, पर मेरा तो मूड ही खराब हो जाता है।

हम लौट पड़ते हैं। वह मुझे खुश करने के इरादे से मेरे कंधे पर हाथ रख देता है। मैं झपटकर हाथ हटा देती हूँ, "क्या कर रहे हो? कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?"

"कौन है यहाँ जो देख लेगा? और देख लेगा तो देख ले, आप ही कुढ़ेगा।"

"नहीं, हमें पसंद नहीं है यह बेशर्मी!" और सच ही मुझे रास्ते में ऐसी हरकतें पसंद नहीं हैं चाहे रास्ता निर्जन ही क्यों न हो, पर है तो रास्ता ही, फिर कानपुर जैसी जगह।

कमरे में लौटकर मैं उसे बैठने को कहती हूँ, पर वह बैठता नहीं, बस, बाँहों में भरकर एक बार चूम लेता है। यह भी जैसे उसका रोज का नियम है।

वह चला जाता है। मैं बाहर बालकनी में निकलकर उसे देखती रहती हूँ। उसका आकार छोटा होते-होते सड़क के मोड़ पर जाकर लुप्त हो जाता है। मैं उधर ही देखती रहती हूँ - निरुद्देश्य-सी खोई-खोई-सी। फिर आकर पढ़ने बैठ जाती हूँ।

रात में सोती हूँ तो देर तक मेरी आँखें मेज पर लगे रजनीगंधा के फूलों को ही निहारती रहती हैं। जाने क्यों, अक्सर मुझे भ्रम हो जाता है कि ये फूल नहीं हैं, मानो संजय की अनेकानेक आँखें हैं, जो मुझे देख रही हैं, सहला रही हैं, दुलरा रही हैं। और अपने को यों असंख्य आँखों से निरंतर देखे जाने की कल्पना से ही मैं लजा जाती हूँ।

मैंने संजय को भी एक बार यह बात बताई थी, तो वह खूब हँसा था और फिर मेरे गालों को सहलाते हुए उसने कहा था कि मैं पागल हूँ, निरी मूर्खा हूँ!

कौन जाने, शायद उसका कहना ही ठीक हो, शायद मैं पागल ही होऊँ!

कानपुर

मैं जानती हूँ, संजय का मन निशीथ को लेकर जब-तब सशंकित हो उठता है, पर मैं उसे कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं निशीथ से नफरत करती हूँ, उसकी याद-मात्र से मेरा मन घृणा से भर उठता है। फिर अठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार भी कोई प्यार होता है भला! निरा बचपन होता है, महज पागलपन! उसमें आवेश रहता है पर स्थायित्व नहीं, गति रहती है पर गहराई नहीं। जिस वेग से वह आरंभ होता है, जरा-सा झटका लगने पर उसी वेग से टूट भी जाता है। और उसके बाद आहों, आँसुओं और सिसकियों का एक दौर, सारी दुनिया की निस्सारता और आत्महत्या करने के अनेकानेक संकल्प और फिर एक तीखी घृणा। जैसे ही जीवन को दूसरा आधार मिल जाता है, उन सबको भूलने में एक दिन भी नहीं लगता। फिर तो वह सब ऐसी बेवकूफी लगती है, जिस पर बैठकर घंटों हँसने की तबीयत होती है। तब एकाएक ही इस बात का अहसास होता है कि ये सारे आँसू, ये सारी आहें उस प्रेमी के लिए नहीं थीं, वरन जीवन की उस रिक्तता और शून्यता के लिए थीं, जिसने जीवन को नीरस बनाकर बोझिल कर दिया था।

तभी तो संजय को पाते ही मैं निशीथ को भूल गई। मेरे आँसू हँसी में बदल गए और आहों की जगह किलकारियाँ गूँजने लगीं। पर संजय है कि जब-तब निशीथ की बात को लेकर व्यर्थ ही खिन्न-सा हो उठता है। मेरे कुछ कहने पर वह खिलखिला अवश्य पड़ता है, पर मैं जानती हूँ, वह पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं है।

उसे कैसे बताऊँ कि मेरे प्यार का, मेरी कोमल भावनाओं का, भविष्य की मेरी अनेकानेक योजनाओं का एकमात्र केंद्र संजय ही है। यह बात दूसरी है कि चाँदनी रात में, किसी निर्जन स्थान में, पेड़-तले बैठकर भी मैं अपनी थीसिस की बात करती हूँ या वह अपने ऑफिस की, मित्रों की बातें करता है, या हम किसी और विषय पर बात करने लगते हैं पर इस सबका यह मतलब तो नहीं कि हम प्रेम नहीं करते! वह क्यों नहीं समझता कि आज हमारी भावुकता यथार्थ में बदल गई है, सपनों की जगह हम वास्तविकता में जीते हैं! हमारे प्रेम को परिपक्वता मिल गई है, जिसका आधार पाकर वह अधिक गहरा हो गया है, स्थायी हो गया है।

पर संजय को कैसे समझाऊँ यह सब? कैसे उसे समझाऊँ कि निशीथ ने मेरा अपमान किया है, ऐसा अपमान, जिसकी कचोट से मैं आज भी तिलमिला जाती हूँ। संबंध तोड़ने से पहले एक बार तो उसने मुझे बताया होता कि आखिर मैंने ऐसा कौन-सा अपराध कर डाला था, जिसके कारण उसने मुझे इतना कठोर दंड दे डाला? सारी दुनिया की भर्त्सना, तिरस्कार, परिहास और दया का विष मुझे पीना पड़ा। विश्वासघाती! नीच कहीं का! और संजय सोचता है कि आज भी मेरे मन में उसके लिए कोई कोमल स्थान है! छिः! मैं उससे नफरत करती हूँ! और सच पूछो तो अपने को भाग्यशालिनी समझती हूँ कि मैं एक ऐसे व्यक्ति के चंगुल में फँसने से बच गई, जिसके लिए प्रेम महज एक खिलवाड़ है।

संजय, यह तो सोचो कि यदि ऐसी कोई भी बात होती, तो क्या मैं तुम्हारे आगे, तुम्हारी हर उचित-अनुचित चेष्टा के आगे, यों आत्मसमर्पण करती? तुम्हारे चुंबनों और आलिंगनों में अपने को यों बिखरने देती? जानते हो, विवाह से पहले कोई भी लड़की किसी को इन सबका अधिकार नहीं देती। पर मैंने दिया। क्या केवल इसीलिए नहीं कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, बहुत-बहुत प्यार करती हूँ? विश्वास करो संजय, तुम्हारा-मेरा प्यार ही सच है। निशीथ का प्यार तो मात्र छल था, भ्रम था, झूठ था।

कानपुर

परसों मुझे कलकत्ता जाना है। बड़ा डर लग रहा है। कैसे क्या होगा? मान लो, इंटरव्यू में बहुत नर्वस हो गई, तो? संजय को कह रही हूँ कि वह भी साथ चले, पर उसे ऑफिस से छुट्टी नहीं मिल सकती। एक तो नया शहर, फिर इंटरव्यू! अपना कोई साथ होता तो बड़ा सहारा मिल जाता। मैं कमरा लेकर अकेली रहती हूँ यों अकेली घूम-फिर भी लेती हूँ तो संजय सोचता है, मुझमें बड़ी हिम्मत है, पर सच, बड़ा डर लग रहा है।

बार-बार मैं यह मान लेती हूँ कि मुझे नौकरी मिल गई है और मैं संजय के साथ वहाँ रहने लगी हूँ। कितनी सुंदर कल्पना है, कितनी मादक! पर इंटरव्यू का भय मादकता से भरे इस स्वप्नजाल को छिन्न-भिन्न कर देता है।

काश, संजय भी किसी तरह मेरे साथ चल पाता!

कलकत्ता

गाड़ी जब हावड़ा स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर प्रवेश करती है तो जाने कैसी विचित्र आशंका, विचित्र-से भय से मेरा मन भर जाता है। प्लेटफॉर्म पर खड़े असंख्य नर-नारियों में मैं इरा को ढूँढती हूँ। वह

कहीं दिखाई नहीं देती। नीचे उतरने के बजाय खिड़की में से ही दूर-दूर तक नजरें दौड़ाती हूँ। आखिर एक कुली को बुलाकर, अपना छोटा-सा सूटकेस और बिस्तर उतारने का आदेश दे, मैं नीचे उतर पड़ती हूँ। उस भीड़ को देखकर मेरी दहशत जैसे और बढ़ जाती है। तभी किसी के हाथ के स्पर्श से मैं बुरी तरह चौंक जाती हूँ। पीछे देखती हूँ तो इरा खड़ी है।

रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछते हुए कहती हूँ, "ओफ! तुझे न देखकर मैं घबरा रही थी कि तुम्हारे घर भी कैसे पहुँचूँगी!"

बाहर आकर हम टैक्सी में बैठते हैं। अभी तक मैं स्वस्थ नहीं हो पाई हूँ। जैसे ही हावड़ा-पुल पर गाड़ी पहुँचती है, हुगली के जल को स्पर्श करती हुई ठंडी हवाएँ तन-मन को एक ताजगी से भर देती हैं। इरा मुझे इस पुल की विशेषता बताती है और मैं विस्मित-सी उस पुल को देखती हूँ, दूर-दूर तक फैले हुगली के विस्तार को देखती हूँ, उसकी छाती पर खड़ी और विहार करती अनेक नौकाओं को देखती हूँ, बड़े-बड़े जहाजों को देखती हूँ।

उसके बाद बहुत ही भीड़-भरी सड़कों पर हमारी टैक्सी रुकती-रुकती चलती है। ऊँची-ऊँची इमारतों और चारों ओर के वातावरण से कुछ विचित्र-सी विराटता का आभास होता है, और इस सबके बीच जैसे मैं अपने को बड़ा खोया-खोया-सा महसूस करती हूँ। कहाँ पटना और कानपुर और कहाँ यह कलकत्ता! मैंने तो आज तक कभी बहुत बड़े शहर देखे ही नहीं!

सारी भीड़ को चीरकर हम रैड रोड पर आ जाते हैं। चौड़ी शांत सड़क। मेरे दोनों ओर लंबे-चौड़े खुले मैदान।

"क्यों इरा, कौन-कौन लोग होंगे इंटरव्यू में? मुझे तो बड़ा डर लग रहा है।"

"अरे, सब ठीक हो जाएगा! तू और डर? हम जैसे डरें तो कोई बात भी है। जिसने अपना सारा कैरियर अपने-आप बनाया, वह भला इंटरव्यू में डरे! फिर कुछ देर ठहरकर कहती है, "अच्छा, भैया-भाभी तो पटना ही होंगे? जाती है कभी उनके पास भी या नहीं?"

"कानपुर आने के बाद एक बार गई थी। कभी-कभी यों ही पत्र लिख देती हूँ।"

"भई कमाल के लोग हैं! बहन को भी नहीं निभा सके!"

मुझे यह प्रसंग कतई पसंद नहीं। मैं नहीं चाहती कि कोई इस विषय पर बात करे। मैं मौन ही रहती हूँ।

इरा का छोटा-सा घर है, सुंदर ढंग से सजाया हुआ। उसके पति के दौरे पर जाने की बात सुनकर पहले तो मुझे अफसोस हुआ था, वे होते तो कुछ मदद ही करते! पर फिर एकाएक लगा कि उनकी अनुपस्थिति में मैं शायद अधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर सकूँ। उनका बच्चा भी बड़ा प्यारा है।

शाम को इरा मुझे कॉफी-हाउस ले जाती है। अचानक मुझे वहाँ निशीथ दिखाई देता है। मैं सकपकाकर नजर घुमा लेती हूँ। पर वह हमारी मेज पर ही आ पहुँचता है। विवश होकर मुझे उधर देखना पड़ता है, नमस्कार भी करना पड़ता है, इरा का परिचय भी करवाना पड़ता है। इरा पास की कुर्सी पर बैठने का निमंत्रण दे देती है। मुझे लगता है, मेरी साँस रुक जाएगी।

"कब आई?"

"आज सवेरे ही।"

"अभी ठहरोगी? ठहरी कहाँ हो?"

जवाब इरा देती है। मैं देख रही हूँ, निशीथ बहुत बदल गया है। उसने कवियों की तरह बाल बढ़ा लिए हैं। यह क्या शौक चर्चाया? उसका रंग स्याह पड़ गया है। वह दुबला भी हो गया है।

विशेष बातचीत नहीं होती और हम लोग उठ पड़ते हैं। इरा को मुन्नू की चिंता सता रही थी, और मैं स्वयं भी घर पहुँचने को उतावली हो रही थी। कॉफी-हाउस से धर्मतल्ला तक वह पैदल चलता हुआ हमारे साथ आता है। इरा उससे बात कर रही है, मानो वह इरा का ही मित्र हो! इरा अपना पता समझा देती है और वह दूसरे दिन नौ बजे आने का वायदा करके चला जाता है।

पूरे तीन साल बाद निशीथ का यों मिलना! न चाहकर भी जैसे सारा अतीत आँखों के सामने खुल जाता है। बहुत दुबला हो गया है निशीथ! लगता है, जैसे मन में कहीं कोई गहरी पीड़ा छिपाए बैठा है।

मुझसे अलग होने का दुख तो नहीं साल रहा है इसे?

कल्पना चाहे कितनी भी मधुर क्यों न हो, एक तृप्ति-युक्त आनंद देनेवाली क्यों न हो, पर मैं जानती हूँ, यह झूठ है। यदि ऐसा ही था तो कौन उसे कहने गया था कि तुम इस संबंध को तोड़ दो? उसने अपनी इच्छा से ही तो यह सब किया था।

एकाएक ही मेरा मन कटु हो उठता है। यही तो है वह व्यक्ति जिसने मुझे अपमानित करके सारी दुनिया के सामने छोड़ दिया था, महज उपहास का पात्र बनाकर! ओह, क्यों नहीं मैंने उसे पहचानने से इनकार कर दिया? जब वह मेज के पास आकर खड़ा हुआ, तो क्यों नहीं मैंने कह दिया कि माफ कीजिए, मैं आपको पहचानती नहीं? जरा उसका खिसियाना तो देखती! वह कल भी आएगा। मुझे उसे साफ-साफ मना कर देना चाहिए था कि मैं उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहती, मैं उससे नफरत करती हूँ!

अच्छा है, आए कल! मैं उसे बता दूँगी कि जल्दी ही मैं संजय से विवाह करनेवाली हूँ। यह भी बता दूँगी कि मैं पिछला सब कुछ भूल चुकी हूँ। यह भी बता दूँगी कि मैं उससे घृणा करती हूँ और उसे जिन्दगी में कभी माफ नहीं कर सकती।

यह सब सोचने के साथ-साथ जाने क्यों, मेरे मन में यह बात भी उठ रही थी कि तीन साल हो गए, अभी तक निशीथ ने विवाह क्यों नहीं किया? करे न करे, मुझे क्या?

क्या वह आज भी मुझसे कुछ उम्मीद रखता है? हूँ! मूर्ख कहीं का!

संजय! मैंने तुमसे कितना कहा था कि तुम मेरे साथ चलो, पर तुम नहीं आए। इस समय जबकि मुझे तुम्हारी इतनी-इतनी याद आ रही है, बताओ, मैं क्या करूँ?

कलकत्ता

नौकरी पाना इतना मुश्किल है, इसका मुझे गुमान तक नहीं था। इरा कहती है कि डेढ़ सौ की नौकरी के लिए खुद मिनिस्टर तक सिफारिश करने पहुँच जाते हैं, फिर यह तो तीन सौ का जॉब है। निशीथ सवेरे से शाम तक इसी चक्कर में भटका है, यहाँ तक कि उसने अपने ऑफिस से भी छुट्टी ले ली है। वह क्यों मेरे काम में इतनी दिलचस्पी ले रहा है? उसका परिचय बड़े-बड़े लोगों से है और वह कहता है कि जैसे भी होगा, वह काम मुझे दिलाकर ही मानेगा। पर आखिर क्यों?

कल मैंने सोचा था कि अपने व्यवहार की रुखाई से मैं स्पष्ट कर दूँगी कि अब वह मेरे पास न आए। पौने नौ बजे के करीब, जब मैं अपने टूटे हुए बाल फेंकने खिड़की पर गई, तो देखा, घर से

थोड़ी दूर पर निशीथ टहल रहा है। वही लंबे बाल, कुरता-पाजामा। तो वह समय से पहले ही आ गया! संजय होता तो ग्यारह के पहले नहीं पहुँचता, समय पर पहुँचना तो वह जानता ही नहीं।

उसे यों चक्कर काटते देख मेरा मन जाने कैसा हो आया। और जब वह आया तो मैं चाहकर भी कटु नहीं हो सकी। मैंने उसे कलकत्ता आने का मकसद बताया, तो लगा कि वह बड़ा प्रसन्न हुआ। वहीं बैठे-बैठे फोन करके उसने इस नौकरी के संबंध में सारी जानकारी प्राप्त कर ली, कैसे क्या करना होगा, उसकी योजना भी बना डाली, बैठे-बैठे फोन से ऑफिस को सूचना भी दे दी कि आज वह ऑफिस नहीं आएगा।

विविध स्थिति मेरी हो रही थी। उसके इस अपनत्व-भरे व्यवहार को मैं स्वीकार भी नहीं कर पाती थी, नकार भी नहीं पाती थी। सारा दिन मैं उसके साथ घूमती रही, पर काम की बात के अतिरिक्त उसने एक भी बात नहीं की। मैंने कई बार चाहा कि संजय की बात बता दूँ,

पर बता नहीं सकी। सोचा, कहीं वह सुनकर यह दिलचस्पी लेना कम न कर दे। उसके आज-भर के प्रयत्नों से ही मुझे काफी उम्मीद हो चली थी। यह नौकरी मेरे लिए कितनी आवश्यक है, मिल जाए तो संजय कितना प्रसन्न होगा, हमारे विवाहित जीवन के आरंभिक दिन कितने सुख में बीतेंगे!

शाम को हम घर लौटते हैं। मैं उसे बैठने को कहती हूँ, पर वह बैठता नहीं, बस खड़ा ही रहता है। उसके चौड़े ललाट पर पसीने की बूँदें चमक रही हैं। एकाएक ही मुझे लगता है, इस समय संजय होता, तो? मैं अपने आँचल से उसका पसीना पोंछ देती, और वह क्या बिना बाँहों में भरे, बिना प्यार किए यों ही चला जाता?

"अच्छा, तो चलता हूँ।"

यंत्रचालित-से मेरे हाथ जुड़ जाते हैं, वह लौट पड़ता है और मैं ठगी-सी देखती रहती हूँ।

सोते समय मेरी आदत है कि संजय के लिए हुए फूलों को निहारती रहती हूँ। यहाँ वे फूल नहीं हैं तो बड़ा सूना-सूना सा लग रहा है।

पता नहीं संजय, तुम इस समय क्या कर रहे हो! तीन दिन हो गए, किसी ने बाँहों में भरकर प्यार तक नहीं किया।

कलकत्ता

आज सवेरे मेरा इंटरव्यू हो गया है। मैं शायद बहुत नर्वस हो गई थी और जैसे उत्तर मुझे देने चाहिए, वैसे नहीं दे पाई। पर निशीथ ने आकर बताया कि मेरा चुना जाना करीब-करीब तय हो गया है। मैं जानती हूँ, यह सब निशीथ की वजह से ही हुआ।

ढलते सूरज की धूप निशीथ के बाएँ गाल पर पड़ रही थी और सामने बैठा निशीथ इतने दिन बाद एक बार फिर मुझे बड़ा प्यारा-सा लगा।

मैंने देखा, मुझसे ज्यादा वह प्रसन्न है। वह कभी किसी का अहसान नहीं लेता, पर मेरी खातिर उसने न जाने कितने लोगों को अहसान लिया। आखिर क्यों? क्या वह चाहता है कि मैं कलकत्ता आकर रहूँ उसके साथ, उसके पास? एक अजीब-सी पुलक से मेरा तन-मन सिहर उठता है। वह ऐसा क्यों चाहता है? उसका ऐसा चाहना बहुत गलत है, बहुत अनुचित है! मैं अपने मन को समझाती हूँ, ऐसी कोई बात नहीं है, शायद वह केवल मेरे प्रति किए गए अन्याय का प्रतिकार करने के लिए यह सब कर रहा है! पर क्या वह समझता है कि उसकी मदद से नौकरी पाकर मैं उसे क्षमा कर दूँगी, या जो कुछ उसने किया है, उसे भूल जाऊँगी? असंभव! मैं कल ही उसे संजय की बात बता दूँगी।

"आज तो इस खुशी में पार्टी हो जाए!"

काम की बात के अलावा यह पहला वाक्य मैं उसके मुँह से सुनती हूँ, मैं इरा की ओर देखती हूँ। वह प्रस्ताव का समर्थन करके भी मुन्नु की तबीयत का बहाना लेकर अपने को काट लेती है। अकेले जाना मुझे कुछ अटपटा-सा लगता है। अभी तक तो काम का बहाना लेकर घूम रही थी, पर अब? फिर भी मैं मना नहीं कर पाती। अंदर जाकर तैयार होती हूँ। मुझे याद आता है, निशीथ को नीला रंग बहुत पसंद था, मैं नीली साड़ी ही पहनती हूँ। बड़े चाव और सतर्कता से अपना प्रसाधन करती हूँ, और बार-बार अपने को टोकती जाती हूँ - किसको रिझाने के लिए यह सब हो रहा है? क्या यह निरा पागलपन नहीं है?

सीढ़ियों पर निशीथ हल्की-सी मुस्कराहट के साथ कहता है, "इस साड़ी में तुम बहुत सुंदर लग रही हो।"

मेरा चेहरा तमतमा जाता है, कनपटियाँ सुर्ख हो जाती हैं। मैं चुपचाप ही इस वाक्य के लिए तैयार नहीं थी। यह सदा चुप रहनेवाला निशीथ बोला भी तो ऐसी बात।

मुझे ऐसी बातें सुनने की जरा भी आदत नहीं है। संजय न कभी मेरे कपड़ों पर ध्यान देता है, न ऐसी बातें करता है, जब कि उसे पूरा अधिकार है। और यह बिना अधिकार ऐसी बातें करे?

3.

पर जाने क्या है कि मैं उस पर नाराज नहीं हो पाती हूँ, बल्कि एक पुलकमय सिहरन महसूस करती हूँ। सच, संजय के मुँह से ऐसा वाक्य सुनने को मेरा मन तरसता रहता है, पर उसने कभी ऐसी बात नहीं की। पिछले ढाई साल से मैं संजय के साथ रह रही हूँ। रोज ही शाम को हम घूमने जाते हैं। कितनी ही बार मैंने शृंगार किया, अच्छे कपड़े पहने, पर प्रशंसा का एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं सुना। इन बातों पर उसका ध्यान ही नहीं जाता, यह देखकर भी जैसे यह सब नहीं देख पाता। इस वाक्य को सुनने के लिए तरसता हुआ मेरा मन जैसे रस से नहा जाता है। पर निशीथ ने यह बात क्यों कही? उसे क्या अधिकार है?

क्या सचमुच ही उसे अधिकार नहीं है? नहीं है?

जाने कैसी मजबूरी है, कैसी विवशता है कि मैं इस बात का जवाब नहीं दे पाती हूँ। निश्चयात्मक दृढ़ता से नहीं कह पाती कि साथ चलते इस व्यक्ति को सचमुच ही मेरे विषय में ऐसी अवांछित बात कहने का कोई अधिकार नहीं है।

हम दोनों टैक्सी में बैठते हैं। मैं सोचती हूँ, आज मैं इसे संजय की बात बता दूँगी।

"स्काई-रूम!" निशीथ टैक्सीवाले को आदेश देता है।

'टुन' की घंटी के साथ मीटर डाउन होता है और टैक्सी हवा से बातें करने लगती है। निशीथ बहुत सतर्कता से कोने में बैठा है, बीच में इतनी जगह छोड़कर कि यदि हिचकोला खाकर भी टैक्सी रुके, तो हमारा स्पर्श न हो। हवा के झोंके से मेरी रेशमी साड़ी का पल्लू उसके समूचे बदन को स्पर्श करता हुआ उसकी गोदी में पड़कर फरफराता है। वह उसे हटाता नहीं है। मुझे लगता है, यह रेशमी, सुवासित पल्लू उसके तन-मन को रस से भिगो रहा है, यह स्पर्श उसे पुलकित कर रहा है, मैं विजय के अकथनीय आह्लाद से भर जाती हूँ।

आज भी मैं संजय की बात नहीं कह पाती। चाहकर भी नहीं कह पाती। अपनी इस विवशता पर मुझे खीज भी आती है, पर मेरा मुँह है कि खुलता ही नहीं। मुझे लगता है कि मैं जैसे कोई बहुत बड़ा अपराध कर रही होऊँ, पर फिर भी मैं कुछ नहीं कह सकी।

यह निशीथ कुछ बोलता क्यों नहीं? उसका यों कोने में दुबककर निर्विकार भाव से बैठे रहना मुझे कतई अच्छा नहीं लगता। एकाएक ही मुझे संजय की याद आने लगती है। इस समय वह यहाँ होता

तो उसका हाथ मेरी कमर में लिपटा होता! यों सड़क पर ऐसी हरकतें मुझे स्वयं पसंद नहीं, पर जाने क्यों, किसी की बाँहों की लपेट के लिए मेरा मन ललक उठता है। मैं जानती हूँ कि जब निशीथ बगल में बैठा हो, उस समय ऐसी इच्छा करना, या ऐसी बात सोचना भी कितना अनुचित है। पर मैं क्या करूँ? जितनी द्रुतगति से टैक्सी चली जा रही है, मुझे लगता है, उतनी ही द्रुतगति से मैं भी बही जा रही हूँ, अनुचित, अवांछित दिशाओं की ओर।

टैक्सी झटका खाकर रुकती है तो मेरी चेतना लौटती है। मैं जल्दी से दाहिनी ओर का फाटक खोलकर कुछ इस हड़बड़ी से नीचे उतर पड़ती हूँ, मानो अंदर निशीथ मेरे साथ कोई बदतमीजी कर रहा हो।

"अजी, इधर से उतरना चाहिए कभी?" टैक्सीवाला कहता है मुझे अपनी गलती का भान होता है। उधर निशीथ खड़ा है, इधर मैं, बीच में टैक्सी!

पैसे लेकर टैक्सी चली जाती है तो हम दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने हो जाते हैं। एकाएक ही मुझे खयाल आता है कि टैक्सी के पैसे तो मुझे ही देने चाहिए थे। पर अब क्या हो सकता था! चुपचाप हम दोनों अंदर जाते हैं। आस-पास बहुत कुछ है, चहल-पहल, रौशनी, रौनक। पर मेरे लिए जैसे सबका अस्तित्व ही मिट जाता है। मैं अपने को सबकी नजरों से ऐसे बचाकर चलती हूँ, मानो मैंने कोई अपराध कर डाला हो, और कोई मुझे पकड़ न ले।

क्या सचमुच ही मुझसे कोई अपराध हो गया है?

आमने-सामने हम दोनों बैठ जाते हैं। मैं होस्ट हूँ, फिर भी उसका पार्ट वही अदा कर रहा है। वही ऑर्डर देता है। बाहर की हलचल और उससे अधिक मन की हलचल में मैं अपने को खोया-खोया-सा महसूस करती हूँ।

हम दोनों के सामने बैरा कोल्ड-कॉफी के गिलास और खाने का कुछ सामान रख जाता है। मुझे बार-बार लगता है कि निशीथ कुछ कहना चाह रहा है। मैं उसके होंठों की धड़कन तक महसूस करती हूँ। वह जल्दी से कॉफी का स्ट्रॉ मुँह से लगा लेता है।

मूर्ख कहीं का! वह सोचता है, मैं बेवकूफ हूँ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि इस समय वह क्या सोच रहा है।

तीन दिन साथ रहकर भी हमने उस प्रसंग को नहीं छोड़ा। शायद नौकरी की बात ही हमारे दिमागों पर छाई हुई थी। पर आज आज अवश्य ही वह बात आएगी! न आए, यह कितना अस्वाभाविक है! पर नहीं, स्वाभाविक शायद यही है। तीन साल पहले जो अध्याय सदा के लिए बंद हो गया, उसे उलटकर देखने का साहस शायद हम दोनों में से किसी में नहीं है। जो संबंध टूट गए, टूट गए। अब उन पर कौन बात करे? मैं तो कभी नहीं करूँगी। पर उसे तो करना चाहिए। तोड़ा उसने था, बात भी वही आरंभ करे। मैं क्यों करूँ, और मुझे क्या पड़ी है? मैं तो जल्दी ही संजय से विवाह करनेवाली हूँ। क्यों नहीं मैं इसे अभी संजय की बात बता देती? पर जाने कैसी विवशता है, जाने कैसा मोह है कि मैं मुँह नहीं खोल पाती। एकाएक मुझे लगता है जैसे उसने कुछ कहा

"आपने कुछ कहा?"

"नहीं तो!"

मैं खिसिया जाती हूँ।

फिर वही मौन! खाने में मेरा जरा भी मन नहीं लग रहा है, पर यंत्रचालित-सी मैं खा रही हूँ। शायद वह भी ऐसे ही खा रहा है। मुझे फिर लगता है कि उसके होंठ फड़क रहे हैं, और स्ट्रॉ पकड़े हुए उँगलियाँ काँप रही हैं। मैं जानती हूँ, वह पूछना चाहता है, "दीपा, तुमने मुझे माफ तो कर दिया न?"

वह पूछ ही क्यों नहीं लेता? मान लो, यदि पूछ ही ले, तो क्या मैं कह सकूँगी कि मैं तुम्हें जिंदगी-भर माफ नहीं कर सकती, मैं तुमसे नफरत करती हूँ, मैं तुम्हारे साथ घूम-फिर ली, या कॉफी पी ली, तो यह मत समझो कि मैं तुम्हारे विश्वासघात की बात को भूल गई हूँ?

और एकाएक ही पिछला सब कुछ मेरी आँखों के आगे तैरने लगता है। पर यह क्या? असह्य अपमानजनित पीड़ा, क्रोध और कटुता क्यों नहीं याद आती? मेरे सामने तो पटना में गुजारी सुहानी संध्याओं और चाँदनी रातों के वे चित्र उभरकर आते हैं, जब घंटों समीप बैठ, मौन भाव से हम एक-दूसरे को निहारा करते थे। बिना स्पर्श किए भी जाने कैसी मादकता तन-मन को विभोर किए रहती थी, जाने कैसी तन्मयता में हम डूबे रहते थे एक विचित्र-सी, स्वप्निल दुनिया में! मैं कुछ बोलना भी चाहती तो वह मेरे मुँह पर उँगली रखकर कहता, "आत्मीयता के ये क्षण अनकहे ही रहने दो, दीपा!"

आज भी तो हम मौन ही हैं, एक-दूसरे के निकट ही हैं। क्या आज भी हम आत्मीयता के उन्हीं क्षणों में गुजर रहे हैं? मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर चीख पड़ना चाहती हूँ, नहीं! नहीं! नहीं! पर कॉफी

सिप करने के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कर पाती। मेरा यह विरोध हृदय की न जाने कौन-सी अतल गहराइयों में डूब जाता है!

निशीथ मुझे बिल नहीं देने देता। एक विचित्र-सी भावना मेरे मन में उठती है कि छीना-झपटी में किसी तरह मेरा हाथ इसके हाथ से छू जाए! मैं अपने स्पर्श से उसके मन के तारों को झनझना देना चाहती हूँ। पर वैसा अवसर नहीं आता। बिल वही देता है, मुझसे तो विरोध भी नहीं किया जाता।

मन में प्रचंड तूफान! पर फिर भी निर्विकार भाव से मैं टैक्सी में आकर बैठती हूँ फिर वही मौन, वही दूरी। पर जाने क्या है कि मुझे लगता है कि निशीथ मेरे बहुत निकट आ गया है, बहुत ही निकट! बार-बार मेरा मन करता है कि क्यों नहीं निशीथ मेरा हाथ पकड़ लेता, क्यों नहीं मेरे कंधे पर हाथ रख देता? मैं जरा भी बुरा नहीं मानूँगी, जरा भी नहीं! पर वह कुछ भी नहीं करता।

सोते समय रोज की तरह मैं आज भी संजय का ध्यान करते हुए ही सोना चाहती हूँ, पर निशीथ है कि बार-बार संजय की आकृति को हटाकर स्वयं आ खड़ा होता है।

कलकत्ता

अपनी मजबूरी पर खीज-खीज जाती हूँ। आज कितना अच्छा मौका था सारी बात बता देने का! पर मैं जाने कहाँ भटकी थी कि कुछ भी नहीं बता पाई।

शाम को मुझे निशीथ अपने साथ 'लेक' ले गया। पानी के किनारे हम घास पर बैठ गए। कुछ दूर पर काफी भीड़-भाड़ और चहल-पहल थी, पर यह स्थान अपेक्षाकृत शांत था। सामने लेक के पानी में छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं। चारों ओर के वातावरण का कुछ विचित्र-सा भाव मन पर पड़ रहा था।

"अब तो तुम यहाँ आ जाओगी!" मेरी ओर देखकर उसने कहा।

"हाँ!"

"नौकरी के बाद क्या इरादा है?"

मैंने देखा, उसकी आँखों में कुछ जानने की आतुरता फैलती जा रही है, शायद कुछ कहने की भी। मुझसे कुछ जानकर वह अपनी बात कहेगा।

"कुछ नहीं!" जाने क्यों मैं यह कह गई। कोई है जो मुझे कचोटे डाल रहा है। क्यों नहीं मैं बता देती कि नौकरी के बाद मैं संजय से विवाह करूँगी, मैं संजय से प्रेम करती हूँ, वह मुझसे प्रेम करता है? वह बहुत अच्छा है, बहुत ही! वह मुझे तुम्हारी तरह धोखा नहीं देगा, पर मैं कुछ भी तो नहीं कह पाती। अपनी इस बेबसी पर मेरी आँखें छलछला आती हैं। मैं दूसरी ओर मुँह फेर लेती हूँ।

"तुम्हारे यहाँ आने से मैं बहुत खुश हूँ!"

मेरी साँस जहाँ-की-तहाँ रुक जाती है आगे के शब्द सुनने के लिए, पर शब्द नहीं आते। बड़ी कातर, करुण और याचना-भरी दृष्टि से मैं उसे देखती हूँ, मानो कह रही होऊँ कि तुम कह क्यों नहीं देते निशीथ, कि आज भी तुम मुझे प्यार करते हो, तुम मुझे सदा अपने पास रखना चाहते हो, जो कुछ हो गया है, उसे भूलकर तुम मुझसे विवाह करना चाहते हो? कह दो, निशीथ, कह दो! यह सुनने के लिए मेरा मन अकुला रहा है, छटपटा रहा है! मैं बुरा नहीं मानूँगी, जरा भी बुरा नहीं मानूँगी। मान ही कैसे सकती हूँ निशीथ! इतना सब हो जाने के बाद भी शायद मैं तुम्हें प्यार करती हूँ - शायद नहीं, सचमुच ही मैं तुम्हें प्यार करती हूँ!

मैं जानती हूँ - तुम कुछ नहीं कहोगे, सदा के ही मितभाषी जो हो। फिर भी कुछ सुनने की आतुरता लिए मैं तुम्हारी तरफ देखती रहती हूँ। पर तुम्हारी नजर तो लेक के पानी पर जमी हुई है शांत, मौन!

आत्मीयता के ये क्षण अनकहे भले ही रह जाएँ पर अनबूझे नहीं रह सकते। तुम चाहे न कहो, पर मैं जानती हूँ, तुम आज भी मुझे प्यार करते हो, बहुत प्यार करते हो! मेरे कलकत्ता आ जाने के बाद इस टूटे संबंध को फिर से जोड़ने की बात ही तुम इस समय सोच रहे हो। तुम आज भी मुझे अपना ही समझते हो, तुम जानते हो, आज भी दीपा तुम्हारी है! और मैं?

लगता है, इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस मुझमें नहीं है। मुझे डर है कि जिस आधार पर मैं तुमसे नफरत करती थी, उसी आधार पर कहीं मुझे अपने से नफरत न करनी पड़े।

लगता है, रात आधी से भी अधिक ढल गई है।

कानपुर

मन में उत्कट अभिलाषा होते हुए भी निशीथ की आवश्यक मीटिंग की बात सुनकर मैंने कह दिया था कि तुम स्टेशन मत आना। इरा आई थी, पर गाड़ी पर बिठाकर ही चली गई, या कहूँ कि मैंने

जबर्दस्ती ही उसे भेज दिया। मैं जानती थी कि लाख मना करने पर भी निशीथ आएगा और विदा के उन अंतिम क्षणों में मैं उसके साथ अकेली ही रहना चाहती थी। मन में एक दबी-सी आशा थी कि चलते समय ही शायद वह कुछ कह दे। गाड़ी चलने में जब दस मिनट रह गए तो देखा, बड़ी व्यग्रता से डिब्बों में झाँकता-झाँकता निशीथ आ रहा था। पागल! उसे इतना तो समझना चाहिए कि उसकी प्रतीक्षा मैं मैं यहाँ बाहर खड़ी हूँ!

मैं दौड़कर उसके पास जाती हूँ, "आप क्यों आए?" पर मुझे उसका आना बड़ा अच्छा लगता है! वह बहुत थका हुआ लग रहा है। शायद सारा दिन बहुत व्यस्त रहा और दौड़ता-दौड़ता मुझे सी-ऑफ करने यहाँ आ पहुँचा। मन करता है कुछ ऐसा करूँ, जिससे इसकी सारी थकान दूर हो जाए। पर क्या करूँ? हम डिब्बे के पास आ जाते हैं।

"जगह अच्छी मिल गई?" वह अंदर झाँकते हुए पूछता है।

"हाँ!"

"पानी-वानी तो है?"

"है।"

"बिस्तर फैला लिया?"

मैं खीज पड़ती हूँ। वह शायद समझ जाता है, सो चुप हो जाता है। हम दोनों एक क्षण को एक-दूसरे की ओर देखते हैं। मैं उसकी आँखों में विचित्र-सी छायाएँ देखती हूँ, मानो कुछ है, जो उसके मन में घुट रहा है, उसे मथ रहा है, पर वह कह नहीं पा रहा है। वह क्यों नहीं कह देता? क्यों नहीं अपने मन की इस घुटन को हल्का कर लेता?

"आज भीड़ विशेष नहीं है," चारों ओर नजर डालकर वह कहता है।

मैं भी एक बार चारों ओर देख लेती हूँ, पर नजर मेरी बार-बार घड़ी पर ही जा रही है। जैसे-जैसे समय सरक रहा है, मेरा मन किसी गहरे अवसाद में डूब रहा है। मुझे कभी उस पर दया आती है तो कभी खीज। गाड़ी चलने में केवल तीन मिनट बाकी रह गए हैं। एक बार फिर हमारी नजरें मिलती हैं।

"ऊपर चढ़ जाओ, अब गाड़ी चलनेवाली है।"

बड़ी असहाय-सी नजर से मैं उसे देखती हूँ, मानो कह रही होऊँ, तुम्हीं चढ़ा दो। और फिर धीरे-धीरे चढ़ जाती हूँ। दरवाजे पर मैं खड़ी हूँ और वह नीचे प्लेटफॉर्म पर।

"जाकर पहुँचने की खबर देना। जैसे ही मुझे इधर कुछ निश्चित रूप से मालूम होगा, तुम्हें सूचना दूँगा।"

मैं कुछ बोलती नहीं, बस उसे देखती रहती हूँ

सीटी... हरी झंडी... फिर सीटी। मेरी आँखें छलछला आती हैं।

गाड़ी एक हल्के-से झटके के साथ सरकने लगती है। वह गाड़ी के साथ कदम आगे बढ़ाता है और मेरे हाथ पर धीरे-से अपना हाथ रख देता है। मेरा रोम-रोम सिहर उठता है। मन करता है चिल्ला पडूँ - मैं सब समझ गई, निशीथ, सब समझ गई! जो कुछ तुम इन चार दिनों में नहीं कह पाए, वह तुम्हारे इस क्षणिक स्पर्श ने कह दिया। विश्वास करो, यदि तुम मेरे हो तो मैं भी तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी, एकमात्र तुम्हारी! पर मैं कुछ कह नहीं पाती। बस, साथ चलते निशीथ को देखती-भर रहती हूँ। गाड़ी के गति पकड़ते ही वह हाथ को जरा-सा दबाकर छोड़ देता है। मेरी छलछलाई आँखें मुँद जाती हैं। मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, बाकी सब झूठ है, अपने को भूलने का, भरमाने का, छलने का असफल प्रयास है।

आँसू-भरी आँखों से मैं प्लेटफॉर्म को पीछे छूटता हुआ देखती हूँ। सारी आकृतियाँ धुँधली-सी दिखाई देती हैं। असंख्य हिलते हुए हाथों के बीच निशीथ के हाथ को, उस हाथ को, जिसने मेरा हाथ पकड़ा था, ढूँढ़ने का असफल-सा प्रयास करती हूँ। गाड़ी प्लेटफॉर्म को पार कर जाती है, और दूर-दूर तक कलकत्ता की जगमगाती बतियाँ दिखाई देती हैं। धीरे-धीरे वे सब दूर हो जाती हैं, पीछे छूटती जाती हैं। मुझे लगता है, यह दैत्याकार ट्रेन मुझे मेरे घर से कहीं दूर ले जा रही है - अनदेखी, अनजानी राहों में गुमराह करने के लिए, भटकाने के लिए!

बोझिल मन से मैं अपने फैलाए हुए बिस्तर पर लेट जाती हूँ। आँखें बंद करते ही सबसे पहले मेरे सामने संजय का चित्र उभरता है कानपुर जाकर मैं उसे क्या कहूँगी? इतने दिनों तक उसे छलती आई, अपने को छलती आई, पर अब नहीं। मैं उसे सारी बात समझा दूँगी। कहूँगी, संजय जिस संबंध को टूटा हुआ जानकर मैं भूल चुकी थी, उसकी जड़ें हृदय की किन अतल गहराइयों में जमी हुई थीं, इसका अहसास कलकत्ता में निशीथ से मिलकर हुआ। याद आता है, तुम निशीथ को लेकर सदैव ही

संदिग्ध रहते थे, पर तब मैं तुम्हें ईर्ष्यालु समझती थी, आज स्वीकार करती हूँ कि तुम जीते, मैं हारी! सच मानना संजय, ढाई साल मैं स्वयं भ्रम में थी और तुम्हें भी भ्रम में डाल रखा था, पर आज भ्रम के, छलना के सारे ही जाल छिन्न-भिन्न हो गए हैं। मैं आज भी निशीथ को प्यार करती हूँ। और यह जानने के बाद, एक दिन भी तुम्हारे साथ और छल करने का दुस्साहस कैसे करूँ? आज पहली बार मैंने अपने संबंधों का विश्लेषण किया, तो जैसे सब कुछ ही स्पष्ट हो गया और जब मेरे सामने सब कुछ स्पष्ट हो गया, तो तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगी, तुम्हारे सामने मैं चाहूँ तो भी झूठ नहीं बोल सकती।

आज लग रहा है, तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो भी भावना है वह प्यार की नहीं, केवल कृतज्ञता की है। तुमने मुझे उस समय सहारा दिया था, जब अपने पिता और निशीथ को खोकर मैं चूर-चूर हो चुकी थी। सारा संसार मुझे वीरान नजर आने लगा था, उस समय तुमने अपने स्नेहिल स्पर्श से मुझे जिला दिया, मेरा मुरझाया, मरा मन हरा हो उठा, मैं कृतकृत्य हो उठी, और समझने लगी कि मैं तुमसे प्यार करती हूँ। पर प्यार की बेसुध घड़ियाँ, वे विभोर क्षण, तन्मयता के वे पल, जहाँ शब्द चुक जाते हैं, हमारे जीवन में कभी नहीं आए। तुम्हीं बताओ, आए कभी? तुम्हारे असंख्य आलिंगनों और चुंबनों के बीच भी, एक क्षण के लिए भी तो मैंने कभी तन-मन की सुध बिसरा देनेवाली पुलक या मादकता का अनुभव नहीं किया।

सोचती हूँ, निशीथ के चले जाने के बाद मेरे जीवन में एक विराट शून्यता आ गई थी, एक खोखलापन आ गया था, तुमने उसकी पूर्ति की। तुम पूरक थे, मैं गलती से तुम्हें प्रियतम समझ बैठी।

मुझे क्षमा कर दो संजय और लौट जाओ। तुम्हें मुझ जैसी अनेक दीपाएँ मिल जाएँगी, जो सचमुच ही तुम्हें प्रियतम की तरह प्यार करेंगी। आज एक बात अच्छी तरह जान गई हूँ कि प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है, बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का, भरमाने का प्रयास-मात्र होता है।

इसी तरह की असंख्य बातें मेरे दिमाग में आती हैं, जो मैं संजय से कहूँगी। कह सकूँगी यह सब? लेकिन कहना तो होगा ही। उसके साथ अब एक दिन भी छल नहीं कर सकती। मन से किसी और की आराधना करके तन से उसकी होने का अभिनय करती रहूँ? छिः! नहीं जानती, यही सब सोचते-सोचते मुझे कब नींद आ गई।

लौटकर अपना कमरा खोलती हूँ, तो देखती हूँ, सब कुछ ज्यों-का-त्यों है, सिर्फ फूलदान के रजनीगंधा मुरझा गए हैं। कुछ फूल झरकर जमीन पर इधर-उधर भी बिखर गए हैं।

आगे बढ़ती हूँ तो जमीन पर पड़ा एक लिफाफा दिखाई देता है। संजय की लिखाई है, खोला तो छोटा-सा पत्र था :

दीपा,

तुमने जो कलकत्ता जाकर कोई सूचना ही नहीं दी। मैं आज ऑफिस के काम से कटक जा रहा हूँ। पाँच-छह दिन में लौट आऊँगा। तब तक तुम आ ही जाओगी। जानने को उत्सुक हूँ कि कलकत्ता में क्या हुआ?

तुम्हारा

संजय

एक लंबा निःश्वास निकल जाता है। लगता है, एक बड़ा बोझ हट गया। इस अवधि में तो मैं अपने को अच्छी तरह तैयार कर लूँगी। नहा-धोकर सबसे पहले मैं निशीथ को पत्र लिखती हूँ। उसकी उपस्थिति से जो हिचक मेरे होंठ बंद किए हुए थी, दूर रहकर वह अपने-आप ही टूट जाती है। मैं स्पष्ट शब्दों में लिख देती हूँ कि चाहे उसने कुछ नहीं कहा, फिर भी मैं सब कुछ समझ गई हूँ। साथ ही यह भी लिख देती हूँ कि मैं उसकी उस हरकत से बहुत दुखी थी, बहुत नाराज भी, पर उसे देखते ही जैसे सारा क्रोध बह गया। इस अपनत्व में क्रोध भला टिक भी कैसे पाता? लौटी हूँ, तब से न जाने कैसी रंगीनी और मादकता मेरी आँखों के आगे छाई है!

एक खूबसूरत-से लिफाफे में उसे बंद करके मैं स्वयं पोस्ट करने जाती हूँ।

रात में सोती हूँ तो अनायास ही मेरी नजर सूने फूलदान पर जाती है। मैं करवट बदलकर सो जाती हूँ।

कानपुर

आज निशीथ को पत्र लिखे पाँचवाँ दिन है। मैं तो कल ही उसके पत्र की राह देख रही थी। पर आज की भी दोनों डाकें निकल गईं। जाने कैसा सूना-सूना, अनमना-अनमना लगता रहा सारा दिन! किसी भी तो काम में जी नहीं लगता। क्यों नहीं लौटती डाक से ही उत्तर दे दिया उसने? समझ में नहीं आता, कैसे समय गुजारूँ!

मैं बाहर बालकनी में जाकर खड़ी हो जाती हूँ। एकाएक खयाल आता है, पिछले ढाई सालों से करीब इसी समय, यहीं खड़े होकर मैंने संजय की प्रतीक्षा की है। क्या आज मैं संजय की प्रतीक्षा कर रही हूँ? या मैं निशीथ के पत्र की प्रतीक्षा कर रही हूँ? शायद किसी की नहीं, क्योंकि जानती हूँ कि दोनों में से कोई भी नहीं आएगा। फिर?

निरुद्देश्य-सी कमरे में लौट पड़ती हूँ। शाम का समय मुझसे घर में नहीं काटा जाता। रोज ही तो संजय के साथ घूमने निकल जाया करती थी। लगता है, यहीं बैठी रही तो दम ही घुट जाएगा। कमरा बंद करके मैं अपने को धकेलती-सी सड़क पर ले आती हूँ। शाम का धुँधलका मन के बोझ को और भी बढ़ा देता है। कहाँ जाऊँ? लगता है, जैसे मेरी राहें भटक गई हैं, मंजिल खो गई है। मैं स्वयं नहीं जानती, आखिर मुझे जाना कहाँ है। फिर भी निरुद्देश्य-सी चलती रहती हूँ। पर आखिर कब तक यों भटकती रहूँ? हारकर लौट पड़ती हूँ।

आते ही मेहता साहब की बच्ची तार का एक लिफाफा देती है।

धड़कते दिल से मैं उसे खोलती हूँ। इरा का तार था - 'नियुक्ति हो गई है। बधाई!'

इतनी बड़ी खुशखबरी पाकर भी जाने क्या है कि खुश नहीं हो पाती। यह खबर तो निशीथ भेजनेवाला था। एकाएक ही एक विचार मन में आता है : क्या जो कुछ मैं सोच गई, वह निरा भ्रम ही था, मात्र मेरी कल्पना, मेरा अनुमान? नहीं-नहीं! उस स्पर्श को मैं भ्रम कैसे मान लूँ, जिसने मेरे तन-मन को डुबो दिया था, जिसके द्वारा उसके हृदय की एक-एक परत मेरे सामने खुल गई थी? लेक पर बिताए उन मधुर क्षणों को भ्रम कैसे मान लूँ, जहाँ उसका मौन ही मुखरित होकर सब कुछ कह गया था? आत्मीयता के वे अनकहे क्षण! तो फिर उसने पत्र क्यों नहीं लिखा? क्या कल उसका पत्र आएगा? क्या आज भी उसे वही हिचक रोके हुए है?

तभी सामने की घड़ी टन्-टन् करके नौ बजाती है। मैं उसे देखती हूँ। यह संजय की लाई हुई है। लगता है, जैसे यह घड़ी घंटे सुना-सुनाकर मुझे संजय की याद दिला रही है। फहराते ये हरे पर्दे, यह हरी बुक-रैक, यह टेबल, यह फूलदान, सभी तो संजय के ही लिए हुए हैं। मेज पर रखा यह पेन उसने मुझे साल-गिरह पर लाकर दिया था। अपनी चेतना के इन बिखरे सूत्रों को समेटकर मैं फिर पढ़ने का प्रयास करती हूँ, पर पढ़ नहीं पाती। हारकर मैं पलंग पर लेट जाती हूँ।

सामने के फूलदान का सूनापन मेरे मन के सूनेपन को और अधिक बढ़ा देता है। मैं कसकर आँखें मूँद लेती हूँ। एक बार फिर मेरी आँखों के आगे लेक का स्वच्छ, नीला जल उभर आता है, जिसमें छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं। उस जल की ओर देखते हुए निशीथ की आकृति उभरकर आती है। वह

लाख जल की ओर देखे, पर चेहरे पर अंकित उसके मन की हलचल को मैं आज भी, इतनी दूर रहकर भी महसूस करती हूँ। कुछ न कह पाने की मजबूरी, उसकी विवशता, उसकी घुटन आज भी मेरे सामने साकार हो उठती है। धीरे-धीरे लेक के पानी का विस्तार सिमटता जाता है, और एक छोटी-सी राइटिंग टेबल में बदल जाता है, और मैं देखती हूँ कि एक हाथ में पेन लिए और दूसरे हाथ की उँगलियों को बालों में उलझाए निशीथ बैठा है वही मजबूरी, वही विवशता, वही घुटन लिए। वह चाहता है, पर जैसे लिख नहीं पाता। वह कोशिश करता है, पर उसका हाथ बस काँपकर रह जाता है। ओह! लगता है, उसकी घुटन मेरा दम घोटकर रख देगी। मैं एकाएक ही आँखें खोल देती हूँ। वही फूलदान, पर्दे, मेज, घड़ी !

आखिर आज निशीथ का पत्र आ गया। धड़कते दिल से मैंने उसे खोला। इतना छोटा-सा पत्र!

प्रिय दीपा,

तुम अच्छी तरह पहुँच गई, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुम्हें अपनी नियुक्ति का तार तो मिल ही गया होगा। मैंने कल ही इरा जी को फोन करके सूचना दे दी थी, और उन्होंने बताया था कि तार दे देंगी। ऑफिस की ओर से भी सूचना मिल जाएगी।

इस सफलता के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करना। सच, मैं बहुत खुश हूँ कि तुम्हें यह काम मिल गया! मेहनत सफल हो गई। शेष फिर।

शुभेच्छु,

निशीथ

बस? धीरे-धीरे पत्र के सारे शब्द आँखों के आगे लुप्त हो जाते हैं, रह जाता है केवल, "शेष फिर!"

तो अभी उसके पास 'कुछ' लिखने को शेष है? क्यों नहीं लिख दिया उसने अभी? क्या लिखेगा वह?

"दीपा!"

मैं मुड़कर दरवाजे की ओर देखती हूँ। रजनीगंधा के ढेर सारे फूल लिए मुस्कराता-सा संजय खड़ा है। एक क्षण मैं संज्ञा-शून्य-सी उसे इस तरह देखती हूँ, मानो पहचानने की कोशिश कर रही हूँ। वह आगे बढ़ता है, तो मेरी खोई हुई चेतना लौटती है, और विक्षिप्त-सी दौड़कर उससे लिपट जाती हूँ।

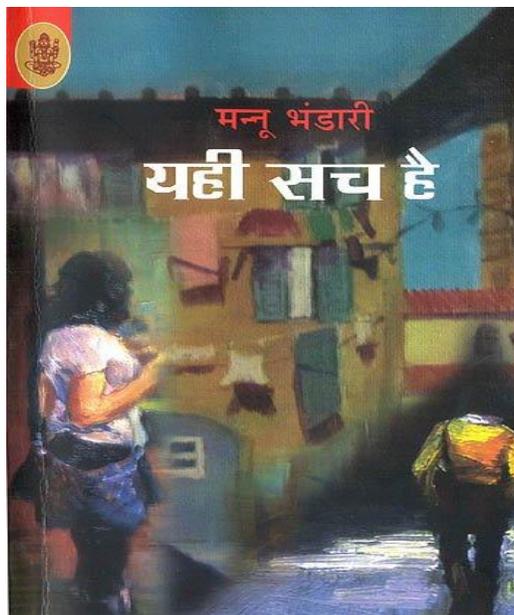
"क्या हो गया है तुम्हें, पागल हो गई हो क्या?"

"तुम कहाँ चले गए थे संजय?" और मेरा स्वर टूट जाता है। अनायास ही आँखों से आँसू बह चलते हैं।

"क्या हो गया? कलकत्ता का काम नहीं मिला क्या? मारो भी गोली काम को। तुम इतनी परेशान क्यों हो रही हो उसके लिए?"

पर मुझसे कुछ नहीं बोला जाता। बस, मेरी बाँहों की जकड़ कसती जाती है, कसती जाती है। रजनीगंधा की महक धीरे-धीरे मेरे तन-मन पर छा जाती है। तभी मैं अपने भाल पर संजय के अधरों का स्पर्श महसूस करती हूँ, और मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था।

और हम दोनों एक-दूसरे के आलिङ्गन में बँधे रहते हैं - चुंबित, प्रति-चुंबित!



“अकेली” कहानी में नारी की वास्तविकता

इस कहानी की कथाकार मन्नू भंडारी हैं। आज हिन्दी जगत में स्त्री लेखन को लेकर ज्यादातर चर्चे होते हैं। स्त्री मन की आकांक्षाएँ, मन की ईर्ष्याएँ, आधुनिकता का संयमित विरोध, जमी हुई रूढ़ियों पर इनकी पैनी दृष्टि हमेशा बनी रहती है। इन सारी विशेषताओं से भरी मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ आज के समय में एक साथ हमें संघर्ष करने की ताकत देती हैं और अपना मार्ग स्वयं प्रस्तुत करती हैं।

उन्होंने स्त्री के विभिन्न रूपों को सिर्फ जिया ही नहीं है, बल्कि उन्हें महसूस भी किया है। जिसका दर्शन उनकी रचनाओं में हमें दिखाई देता है। पुरुषों का दंश उन्होंने भोगा है, उसके जहर को पिया है। उसकी कड़वाहट को महसूस किया। उन्होंने बहुत दर्द सहा है। फिर भी मातृत्व को सूखने नहीं दिया है। उनके इसी गुण के कारण उनकी रचनाओं में रूखापन महसूस नहीं होता है। ‘अकेली’ कहानी उनके जीवन का अंश है, पर उस कथ्य के रूप में नहीं, जैसा इस कहानी में हमने देखा है।

अकेली मन्नू भंडारी द्वारा लिखी गयी एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इस कहानी में एक ऐसी औरत का वर्णन है जो अपने पति के होते हुए भी अकेली है। उस स्त्री का नाम सोमा है। लोग प्यार से उसे सोमा बुआ कहते हैं।

इस कहानी में सोमा बुआ के मानसिक संसार का वर्णन किया गया है। उसका सोचना, अलग अलग विषयों पर उसके विचार, परिस्थितियों को वह किस प्रकार संभालती है आदि को इस कहानी में दिखाया गया है। पुत्र की मौत और पति के हरिद्वार चले जाने के बाद सोमा अकेली रह जाती है तथा अपने आप को समाज को सौंप देती है जिसका अर्थ है वह सामाजिक कामों में अपना मन लगा लेती है लेकिन वहाँ भी उसके पति उसमें रोक-टोक करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका मन्नू भंडारी ने स्त्री मन के तमाम उन भावों को इस कहानी में चित्रित करने में सफलता पाई है। किस तरह से मन में अपार सूनापन लिए हुए सोमा बुआ समाज, पास-पड़ोस में खुश होने का प्रयास करती हैं। किस तरह किसी को अपने अकेलेपन का आभास भी नहीं होने देती हैं। समाज, परिवार के बीच में रहते हुए भी अकेली रहती है।



सोनलि रऊत, +3 तृतीय वर्ष



आपकी बात

मुझे हिन्दी भारती ई-पत्रिका बहुत ही अच्छी लगती है। इस पत्रिका से हमें हमेशा कुछ न कुछ नया सीखने को मिलता है। यह पत्रिका हर महीने निकलती है। इस पत्रिका के माध्यम से हम हमारे मंतव्य दे पाते हैं। इस पत्रिका के हर एक लेख मुझे बहुत पसंद आते हैं। हमारे मैडम और हमारी कड़ी मेहनत से ये पत्रिका बहुत आगे जा रही है और बहुत आगे जाएगी।

राजश्री बेज्ज

मैं बहुत खुश हूँ कि 'आपकी बात' में मुझे शामिल होने का मौका मिला। इस ई पत्रिका में हमारे विभाग की सारी छात्रायें लेख लिखती हैं, जिसके जरिये हमारे हिंदी लिखने और बोलने में सुधार आया है। गर्व होता है कि अब हमारे विभाग की सारी छात्रायें बहुत अच्छे लेख लिखने लगी हैं जिसमें से मुझे लिजा, सोनाली, पिंकी, और शरीफा के लेख मुझे बहुत पसंद आते हैं। धन्यवाद मैडम यह सिर्फ आपकी वजह से हुआ है, क्योंकि इससे पहले इस बारे में ना ही किसी ने सोचा था और ना ही इस ओर किसी ने प्रयास किसी ने किया था। मैं यह आशा करती हूँ कि हम सबकी लगन इस ई-पत्रिका को और आगे तक लेके जाएगी।

यासमीन नाज़

हिंदी विभाग की जो ई- पत्रिका है वह सारे छात्राओं को एक नई दिशा के ओर ले जा रही है। जहाँ हमें ये पत्रिका अपनी खुद की पहचान बनाने में मदद करती है। इस ई-पत्रिका में छात्रायें अपने मन से कविता-कहानी लिखते हैं, अपनी संस्कृति या किसी विशिष्ट व्यक्ति के बारे में अध्ययन करते हैं। इससे हमें नये नये विचार और बहुत सारी बातें पता चलती हैं तथा साथ ही अन्य छात्राओं के लिये एक उदाहरण भी है कि अपनी पहचान कैसे बनाये।

सस्मिता महान्ती

मन्नु भंडारी के उपन्यास

<https://youtu.be/wsqx16UvMfI>

यादों के गलियारों से

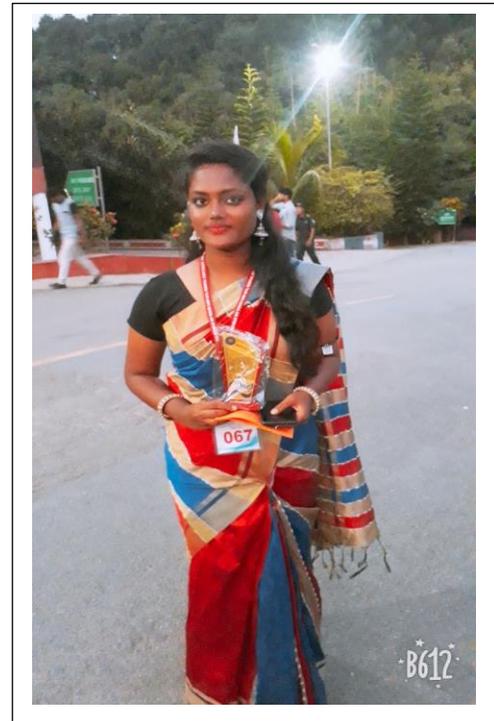
विभाग की छात्रायें प्राचार्य महोदय के अवकाश प्राप्ति के अवसर पर शुभकामनायें देते हुए



समृद्ध भारत विकसित ओडिशा मिशन में भाग लेती विभाग की छात्रायें



राष्ट्रीय सेवा संघ के पूर्व गणतंत्र दिवस कैंप में भाग लेती विभाग की छात्रा सस्मिता मोहंती



धन्यवाद

